मैं नेहरू से मिला

लेखक

तिबौर माँड

अनुवादक

मुनीश सक्सेना

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
दिल्ली

मूल्य : तीन रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्राक्कथन

इस पुस्तक की रामकहानी बहुत सीधी-सादी है।

जापान से लौटते हुए अक्तूबर १९५५ में मेरी प्रार्थना पर भारतीय प्रधान मंत्री ने मुझसे भेंट की। मैंने उनसे पूछा कि क्या वह चार ऐसी वार्ताओं के लिए तैयार होंगे जिन्हें पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा सके: मैंने इस बात पर जोर दिया कि हम प्रतिदिन की राजनीतिक समस्याओं से दूर रहेंगे और अधिक व्यापक आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयो पर विचार करेंगे। अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम के कारण श्री नेहरू ने कुछ संकोच प्रकट किया पर वह इस पर राजी हो गये कि मैं एक पत्र में उन विषयो को स्पष्ट रूप से लिखकर भेज दूं जिन पर मैं उनसे अपने विचार प्रकट कराना चाहता था।

मैं नयी दिल्ली से भारत की यात्रा पर निकल पड़ा और उन्हें कुछ पंक्तियों का एक पत्र भेज दिया जिसमे मैंने उन मुख्य-मुख्य विषयो की सूची दे दी जिन पर मैं बातें करना चाहता था। नयी दिल्ली वापस आने पर मुझे श्री नेहरू का एक पत्र मिला जिसमे उन्होंने लिखा था: "(समय के अभाव) के अतिरिक्त मैं आपकी प्रस्तावित (वार्ताओं) का विचार करके कुछ भयभीत-सा हो गया हूँ। मुझे आपसे मिलने और इन विषयो पर आपसे बातें करने मे कोई एतराज नहीं है। लेकिन न तो मैं दार्शनिक होने का दावा करता हूँ और न आपके लिखे हुए किसी विषय का विशेषज्ञ ही। कुछ विषय तो शायद ऐसे हैं जो मेरे बस के बाहर हैं। दूसरे विषयों पर मैं कुछ सतही ढंग से ही अपने विचार प्रकट कर सकूंगा, यानी सिर्फ उस हद तक जहां तक कि उनका संबंध भारत मे मेरी

तात्कालिक समस्याओ से है। मेरे पास दुनिया की मुश्किलो का कोई आम हल नही है और न ही मै अपने आपको उन्हे हल करने के योग्य समझता हूँ।"

कुछ दिन बाद प्रधान मत्री के बाग के लॉन पर बैठकर श्री नेहरू ने यह कहकर कि उन्हे कोई "विशेष" बात नही कहना है एक बार फिर अपना सकोच प्रकट किया। मैने उत्तर दिया कि एक ऐसा व्यक्ति जिसे मानव-जाति का सातवाँ भाग अपनी स्वतन्त्र इच्छा से आराध्य मानता है और जो इससे भी अधिक लोगो की आकाक्षाओ को व्यक्त करता हो, उसकी हर बात मे कुछ-न कुछ "विशेष" बात होना अनिवार्य है।

कुछ दिन बाद प्रधान मत्री ने मेरी योजना स्वीकार कर ली। हमारी बातचीत ३१ दिसम्बर १९५५ और ९ जनवरी १९५६ के बीच प्रधान मत्री के निवासस्थान पर हुई। इस बातचीत के लिए पहले से कोई तैयारी नही की गयी थी और उसे आल-इडिया रेडियो द्वारा दिये गये एक टेप-रेकार्डर पर सीधे भर लिया गया।

मैने शुरू मे श्री नेहरू को विषयो की जो सक्षिप्त सूची भेजी थी, चूँकि उसे मैने बिल्कुल ही बदल दिया था इसलिए हर बातचीत से पहले मै प्रधान मत्री को उन विषयो के शीर्षक पढकर सुना देता था जिन पर उस दिन विचार होना था। वास्तव मे, पहले दो-तीन सवालो के बाद आमतौर पर हम ऐसी समस्याओ पर पहुँच जाते थे जो मेरी मूल सूची मे नही होते थे और हमारी बातचीत बिना किसी निश्चित योजना के चलती रहती थी। व्यक्त किये गये विचारो की बेसाख्तगी को बनाये रखने की इच्छा के कारण ही बहुधा ऐसा मालूम होता है कि इस बातचीत के दौरान मे हम एक विषय से हटकर दूसरे विषय पर पहुँच जाते थे और उसमे कोई कठोर व्यवस्था नही दिखायी पडती। मै यह भी कह देना चाहता हूँ कि श्री नेहरू ने एक बार भी न तो किसी विषय पर आपत्ति की न किसी विषय को छोड देने के लिए ही कहा।

छोटे-मोटे हेर-फेर के अतिरिक्त—जो कि बातचीत के दौरान मे कहे

गये शब्दो को छापते समय अनिवार्य होता है—यहाँ मूल रेकार्ड के शब्दों को ज्यो-का-त्यो छापा जा रहा है। चूँकि श्री नेहरू के पास टाइप की हुई पाण्डुलिपि को पढने और ठीक करने का समय नही था इसलिए मैंने इस पाठ को उन रेकार्डों से मिलाकर देख लिया है जो ऑल-इडिया रेडियो ने मूल टेप-रिकार्डिग से कृपा करके मेरे लिए तैयार किये थे।

पेरिस, वसत १९५६ —तिबौर मॉड

१

तिवौर मांड : प्रधान मत्रीजी, अभी कुछ ही दिन पहले हमने आपकी छियासठवीं वर्षगांठ मनायी है। आप जैसे आदमी के लिए भी, जिसका दिल इतना नौजवान है, यह एक ऐसी उमर है जव आदमी अपने विखराव को समेटता है और अपने पिछले जीवन पर विचार करता है; यह एक ऐसी उमर है जव आदमी मानो किसी पहाड की चोटी पर से अपनी जिदगी की पूरी तस्वीर पर नजर डाल सकता है और उसकी खास-खास मजिलो को उनकी सही परिप्रेक्ष्य मे देख सकता है। इस पहली वातचीत का मकसद आपसे यह दरख्वास्त करना है कि आप अपनी जिदगी की इन मज़िलो के वारे मे कुछ वताये, आपकी जिदगी मे उनकी क्या जगह रही है और आपके विचारो, फैसलो तया कामो पर उनका कितना असर पडा है।

इसके साथ ही यह बात भी है कि जब किसी आदमी की जिंदगी मे नयी-नयी बातें बहुत जल्दी-जल्दी होती रहती है, तो वह पिछले के मुकाबले मे मौजूदा ज़माने के बारे मे ज्यादा सोचता रहता है—कभी-कभी की बात छोड दीजिये। जब भी मैं जेल जाता था तो मुझे अपनी पिछली जिंदगी के बारे मे सोचना पडता था क्योकि तब कोई मौजूदा जमाना होता ही नही था। जिसके नतीजे के तौर पर मैंने अपनी किताबे लिखी। जेल के बाहर, इस तरह अपने दिल की गहराइयो मे पैठकर लिखने का माहौल पैदा करने मे मुझे मुश्किल पडती है। पिछले जमाने के बारे मे सोचने के लिए मुझे फिर जेल वापस जाना पडेगा और सो भी बहुत दिनो के लिए। लेकिन यह भी सच है कि हर आदमी कभी-कभी पिछली बातो के बारे मे सोचता तो है ही। लेकिन, मैं कहना चाहूँगा, गहराई से और लगातार नही।

मॉड आपकी बात काटकर मैं इतना कहना चाहता हूँ कि, मै उम्मीद करता हूँ कि आप जेल तो नही जायेंगे और यह भी कहना चाहता हूँ कि ऐसे ज्यादातर लोग जो एक तरह से अपने जमाने से बहुत आगे होते है, एक तरह के जेलखाने मे ही होते है क्योकि वे चारो तरफ एक ऐसी दुनिया से घिरे रहते है जो उनके विचारो को स्वीकार करने के लिए तैयार नही रहती। इसलिए इस ख्याल से कि उन विचारो को माननेवाले आप अकेले आदमी है, इस ख्याल से कि लोग आपको पूरी तरह समझते नही, शायद उसी तरह की प्रेरणा मिलती है जैसे कि आप जेलखाने मे हो ?

नेहरू बात कुछ अजीब तो है लेकिन कुछ हद तक मैं भीड मे भी अकेला रह सकता हूँ, एक तरह से मैं अपने-आपको मौजूदा हलचल से अलग कर सकता हूँ। इससे मुझे अपने-आपको थोडा-बहुत ताजा रखने मे बहुत ही ज्यादा मदद मिलती है। यह बात तो है। लेकिन जैसा कि आप कहते है, पिछली बातो पर नज़र डालने से तरह-तरह के ख्याल दिमाग मे आते है, तरह-तरह की बाते दिल मे उठती है और उन्हे सुलझाना जरा मुश्किल काम होता है।

मॉड माफ कीजियेगा, मै जरा गुस्ताखी करके इस बातचीत को एक तरतीब देने की कोशिश करूँगा।

एक परदेसी की हैसियत से, आपकी किताबो और आपके भाषणो को

पढनेवाले की हैसियत से मैं आपकी इस जाती पिछली जिंदगी पर चार हिस्सों मे गौर करने की कोशिश करूँगा।

जाहिर है, सबसे पहले आपका बचपन आता है; आपका हिंदुस्तानी माहौल, इलाहाबाद का वह घर, आपकी शिक्षा और जो विचार आपमे समा गये है; और आपके पिता का बहुत बडा असर जो आपकी रचनाओ मे इतना साफ झलकता है। दूसरे, पश्चिमी देशो मे रहने का आप पर गहरा असर; इगलैड मे कई बरस तक आपका रहना। तीसरे, जिसे हम शायद "मार्क्सवाद" कह सकते है, जिसमे बीसवी शताब्दी के शुरू के सभी क्रातिकारी आदोलन और महान विचार शामिल है। और फिर चौथे, गाँधीजी से आपकी मुलाकात।

अगर इससे कोई आसानी हो सके तो हम अपनी बातचीत को इन चार हिस्सो मे बाँट सकते है।

नेहरू जैसा आप चाहे।...लेकिन बहुत बारीकियो मे न जाकर सिर्फ मोटे-मोटे तौर पर।

तो आप क्या चाहते है, मै किस चीज़ के बारे मे बताऊँ? अपने बचपन से शुरू करूँ?

मॉड चूँकि आज आप भारत की काया पलटने मे लगे हुए है, इसलिए मै समझता हूँ कि यह बात बहुत अहमियत रखती है कि आपने हिंदुस्तान से क्या लिया है, हिंदुस्तान आपके लिए क्या था और आज क्या है और आपके विचारो को ढालने मे किस हद तक इस बात का हाथ रहा है।

नेहरू. मै समझता हूँ कि हिंदुस्तान मेरी नस-नस मे समाया हुआ है। हिंदुस्तान का ही एक हिस्सा हूँ। इसलिए मुझमे समाया हुआ तो वह हमेशा से ही था। लेकिन शुरू मे मुझे इसका एहसास नही था। बचपन मे, उस हिंदुस्तानी माहौल के अलावा जो मेरे जाने बिना ही मेरी नस-नस मे समा गया था, मुझे सबसे पहले हिंदुस्तान को अच्छी तरह समझने का मौका अपनी माँ से और घर की दूसरी औरतो से मिला जिन्हे, जैसा कि आप जानते होगे, न जाने कितनी हिंदुस्तानी कहानियाँ, पुराणो की कथाएँ याद रहती थी और शायद आज भी औरतो को इतनी ही कहानियाँ याद होती होगी। उनमे से

वे औरते भी जिन्हें आप अनपढ कह सकते है, या जो वहुत पढी-लिखी नही होती थी, वे भी इस माने में तहजीवयाफ्ता होती थी कि उन्हे हमारे महाकाव्यो की सारी कहानियाँ रत्ती-रत्ती याद रहती थी। वे इन कहानियो को वच्चो को सुनाती थी और ये कहानियाँ धीरे-धीरे बच्चो के दिलो मे घर कर जाती थीं। एक तो यह चीज थी। और फिर यह वात भी थी कि मै उत्तर भारत में पला और बढा था, जहाँ की वोलचाल, रहन-सहन, खाने-पीने वगैरह मे एक ऐसी चीज़ शामिल है जिसे लोग कभी-कभी मुसलमानों की तहजीव कहते है। इसलिए मैं इस मिले-जुले सास्कृतिक जीवन का आदी हो गया। "सास्कृतिक" एक बहुत बडा लफ्ज है, लेकिन यह भी जिदगी का एक ढर्रा था, एक ऐसा ढर्रा जिसमे पश्चिमी मुल्को के भी कुछ तौर-तरीके शामिल हो गये है।

मेरे पिता एक ऐसी पीढी के थे जो पुराने दकियानूसीपन के खिलाफ लडी थी। मेरे दादा सोलह आने पुराने ढग के आदमी थे। दरअसल, मेरे पिता मेरे दादा के मरने के वाद पैदा हुए थे। इस तरह मेरे दादा अवसे कोई सौ वरस पहले मर गये थे।

मेरे पिता ने समाज के कई रीति-रिवाजो के खिलाफ वगावत की थी। ज़ाहिर है मेरे ऊपर अपने वचपन मे इसका कुछ असर पडा ही। आजकल के ज़माने को देखते हुए मेरे पिता को कई वातो मे दकियानूसी समझा जायेगा। लेकिन उस जमाने मे वह वहुत वडे वागी समझे जाते थे। और वह अपने इरादे के वहुत पक्के थे। इसका मुझपर वहुत असर पडा और इस तरह मै कुछ-कुछ मिले-जुले माहौल मे वडा हुआ, कितावे, कहानियाँ और रिसाले पढते रहने से धीरे-धीरे मुझपर पश्चिम का असर, या यो कहना चाहिये, पश्चिम में भी अग्रेजो का असर, वढता गया। इस हालत मे मै विलायत गया।.

ऑड इगलैंड पहुँचने से पहले आपने अपनी जिंदगी के वारे मे जो कुछ लिखा है उससे मेरी समझ मे एक वात साफ तौर पर नही आयी। हम फिर इलाहावाद वापस चले, वह उन्नीसवी शताव्दी के आखिर का ज़माना है, जो हिंदुस्तान मे सुधारो का ज़माना था, वह उदारवादियो की पीढी का ज़माना था और मैं समझता हूँ आपके पिता भी उसी पीढी के थे। उन्होने समाज को सस्कृति की दृष्टि से सुधारने की कोशिश की। लेकिन उस ज़माने मे दो साफ

धाराएँ अलग-अलग दिखायी देती थी : एक तो जैसे ब्राह्म समाज या नव हिंदू आदोलन और दूसरा, समझ लीजिये, कानूनी सुधार का रुख जो हिंदू धर्म को नही बल्कि केवल उसके समाजी पहलुओ को सुधारना चाहता था। आपका इलाहाबाद का घराना इन दोनो में से किस धारा के साथ था? उसके साथ जो हिंदू धर्म को सुधारना चाहती थी या उसके साथ जो धर्म के गिर्द की इस हिंदू समाजी फजा को बदलना चाहती थी?

नेहरू : बचपन मे यह मसला मेरे सामने आया ही नही। मेरे पिता वैसे मजहबी आदमी नही थे। अलबत्ता, उनके दिल मे हिंदू धर्म की कुछ इज्जत ज़रूर थी; वह उसी के साये मे पले और बढे थे। लेकिन किसी भी ज़माने में वह मजहबी नही थे। हिंदुओ के बहुत-से समाजी रीति-रिवाज उन्हे पसद नही थे और उन्होने उन जजीरो को तोड दिया। अपनी बिरादरीवालो से उनकी टक्कर भी हुई और उन्हे बिरादरी से बाहर कर दिया गया। उन्होने इसकी जरा भी परवाह नही की। वह अपने रास्ते पर आगे बढते गये। वह अपने इरादे के बहुत पक्के आदमी थे। और अपने पेशे मे बहुत कामयाब थे। उनका ज्यादातर वक्त अपने काम में, यानी वकालत मे चला जाता था। उन्होने किसी भी तरह अपना नाता उन लोगो से नही जोडा जिन्हे समाज-सुधारक कहा जाता था। उनकी हमदर्दी उनके साथ ज़रूर थी पर वह उनकी कोशिशो को बेकार समझते थे। कुछ भी हो, उन दिनो उन्हे अपनी वकालत से इतना वक्त ही कहाँ मिलता था कि इन बातो की फिक्र करते। अपनी जाती ज़िंदगी मे जरूर उन्होने समाज के बनाये हुए बहुत-से कानूनो को तोडा। और उन्हे बहुत कामयाबी भी मिली क्योंकि वह तब्दीली का, परिवर्तनो का ज़माना था। दूसरो ने भी ऐसा ही किया। उन दिनो, मैं समझता हूँ कि मेरा ख्याल भी यही था कि बहुत-से समाजी रीति-रिवाज़ बेकार हो चुके हैं और उन्हे बदलना ज़रूरी है।

मॉड : मुझे याद पडता है कि आपने खुद लिखा है कि एक बार आप गगा नहाने गये थे, कोई धार्मिक स्नान...

नेहरू : मैं नहीं समझता कि उसका मजहब से या धर्म से ऐसा कोई खास ताल्लुक था। हर बच्चे के दिल में यह उमग होती है कि वह बडे मेले मे जाये,

जहाँ हजारो-लाखो लोग होते है। मैं इसमे धर्म की कोई बात नही समझता, बल्कि ..

मॉड . .. आत्मा की बात नही बल्कि सैर-तफरीह की बात

नेहरू . उसमे वह भीड के साथ घुलने-मिलने की भी बात थी।

मुझे याद है कि बचपन मे मै उन बडे-बड़े मेलो मे जाया करता था जो हर साल जनवरी मे इलाहाबाद मे होते है और मुझे भीड़ मे बहुत आनन्द आता था। मेरे नज़दीक गगा मे नहाना कोई बहुत बडी बात नही थी। लेकिन मै आपको यह बता दूँ कि मेरे दिल मे गंगा के लिए हमेशा से एक मुहब्बत रही है। इसका मजहब से कोई सबध नही है, एक तरह की सास्कृतिक पृष्ठ-भूमि समझ लीजिये, भारत की सस्कृति, उसके इतिहास और विकास की न जाने कितनी बातो के साथ गगा का नाम जुडा हुआ है। जहाँ मै रहता था, जहाँ मैने अपना बचपन बिताया, वहाँ हमेशा से ही मैने गगा को देखा।

मॉड वह आपके बचपन की पृष्ठभूमि है।

नेहरू . हाँ, मेरे बचपन की पृष्ठभूमि। .

मॉड लेकिन इगलैड जाने से पहले और, यो समझ लीजिये कि पश्चिम के इन उदारवादी विचारो के बीच मे पहुँचने से पहले भी क्या हिंदू समाज की शक्ल बदलने की अपनी इस ख्वाहिश के बारे मे आपके सामने साफ-साफ कोई नक्शा था ? क्या पश्चिमी उदारवाद के तरीको के असर मे आने से पहले ही आपके मन मे हिंदू समाज के खिलाफ बगावत थी।

नेहरू . हाँ, इस हद तक कि मेरे पिता खुद उसके खिलाफ बगावत कर रहे थे और मै उनकी इस बात को मानता था और समझता था कि यही ठीक बात भी है। इगलैड जाने से पहले—जैसा कि शायद आपको याद होगा—अगर आपने मेरी किताब पढी है—मुझ पर एक मास्टर साहब के जरिये, जो मुझे पढाते थे और श्रीमती ऐनी बेसेंट के जरिये थियोसोफी का भी थोडा-बहुत रग चढ चुका था।

मॉड . आपने जो कुछ लिखा है उससे पता चलता है कि जल्द ही आपका दिल उधर से हट गया।

नेहरू हाँ, मै मायूस इसलिए हो गया कि मुझे ऐसा लगा कि थियोसोफी

से कुछ होनेवाला नही है। यह बात नही है कि जो कुछ वे लोग कहते थे उसमे कोई गलत बात थी। जो कुछ वे लोग कहते थे उसमे बहुत-कुछ सच्चाई भी है। बात यह है कि जो लोग थियोसोफिकल सोसायटी मे काम करते थे उनके बारे मे मुझे ऐसा लगा कि वे दुनिया के सवालो से बिल्कुल अलग रहते थे, मुझे ऐसा लगता था कि वे अपने-आपको दूसरो से अच्छा, सबसे ऊँचा समझते थे। लेकिन बचपन मे मुझ पर मिसेज बेसेंट का बहुत गहरा असर पडा। और बाद मे, कई साल बाद, जब मै राजनीति के मैदान मे आया, तब भी मुझ पर उनका बहुत गहरा असर पडा।

मॉड लेकिन यह बगावत. क्या उसके अदर कोई समाजी बात भी थी या सिर्फ दिल की एक उमग थी जिसके साथ कुछ कौमपरस्ती का जज्बा, राष्ट्रवाद की भावना भी मिली हुई थी?

नेहरू . मै समझता हूँ कि उसमे कोई बहुत समाजी बात नही थी, कम-से-कम मुझे उस बगावत के समाजी होने का एहसास नही था अलबत्ता मै अपने चारो ओर के समाज मे जो आदते और रीति-रिवाज देखता था उनमे से कुछ मुझे नापसद थे और इसलिए मै उन तौर-तरीको की ओर खिचने लगा जिन्हे मै पश्चिमी तौर-तरीके समझता था, पश्चिमी भी क्या, कहना चाहिये अग्रेजी तौर-तरीको की तरफ ..

मॉड जिसकी आपके दिमाग मे एक बहुत ही शानदार तसवीर थी ..

नेहरू . यकीनन

मॉड . ..तो जिस वक्त आप इगलैंड गये उस वक्त आपकी उमर...

नेहरू .पद्रह साल की थी।...वहॉ भी मैने उस जिदगी मे घुल-मिल जाने की कोशिश की, और मुझे इसमे कोई खास मुश्किल नही हुई न वहाँ की समाजी जिदगी मे, और बाद मे कालेज की जिदगी मे, और मै तो यह कहूँगा कि दरअसल कैम्ब्रिज मे पहुँचकर ही मेरे दिमाग मे मोटे-मोटे तौर पर कुछ समाजवादी विचार—कुछ फेबियन समाजवाद के और कुछ उससे ज्यादा तेज किस्म के समाजवादी विचार—पैदा हुए। लेकिन यह सब-कुछ बिल्कुल किताबी हद तक था।

साँड . आज आप जब अपनी पिछली जिंदगी पर नज़र डालते है तो आप किन लोगो को ऐसा समझते है जिनका आप पर उस ज़माने मे, जबकि आपकी ज़िदगी किसी ख़ास साँचे में ढल नही पायी थी, सबसे ज्यादा असर पडा ? उन दिनो यूनिवर्सिटी मे अक्सर बहुत बडे-बड़े लोगो के लेक्चर हुआ करते थे।

नेहरू : मै नही समझता कि मै किसी ख़ास आदमी का नाम बता सकता हूँ जिसका मुझ पर बहुत गहरा असर पड़ा हो। अलावा ऐसे लोगो के जैसे बर्नार्ड शा, बर्टरैंड रसेल, अर्थशास्त्री कीन्स, जो वहाँ लेक्चर देने आया करते थे। . हालाँकि मै साइस पढता था लेकिन मुझे अपनी पढाई के विषयो के अलावा प्राथमिक दर्शनशास्त्र के लेक्चरो मे, साहित्य मे, यूनानी साहित्य में, कविता मे और इसी तरह की दूसरी चीज़ो मे भी दिलचस्पी थी।

साँड : जब आप बर्नार्ड शा के या वैज्ञानिक ढग से सोचनेवाले शुरू-शुरू के सोशलिस्टो की उस शानदार पीढी के दूसरे लोगो के लेक्चर सुनते थे तो उसमे कौन-सी चीज़ थी जो आपको सबसे ज्यादा अपनी ओर खीचती थी ? वे जिस समाज की तस्वीर खीचते थे उसकी तर्कसगत व्यवस्था या यह बात कि उनके उसूल, उनकी विचारधारा बुनियादी तौर पर ऐसी होगी जिसे लोग आमतौर पर उपनिवेश-विरोधी कहते है।

नेहरू : मुझे नही याद पडता कि उसमे उपनिवेशवाद-विरोध की कोई ख़ास बात रही हो। हाँ, यह बात ज़रूर है कि मै हिंदुस्तान मे अंग्रेज़ो की हुकूमत के खिलाफ था; बहुत सख़्त खिलाफ था, और शायद, हो सकता है कि इस बात मे और उनकी विचारधारा मे कोई ताल्लुक रहा हो। लेकिन मुझे नही याद पडता कि वे लोग इसके बारे मे ज्यादा बाते करते थे। कुछ आदर्शवादी थे जो अफ्रीका की दुर्दशा या भारत की दुर्दशा की, या इसी किस्म की बाते करते थे.

साँड . लेकिन जब सोशलिस्ट एक मुल्क के दूसरे मुल्क का खून चूसने की बात करते थे तो उसमे यह बात साफ तौर पर छुपी होती थी कि आगे चलकर वे उपनिवेशवाद के खिलाफ भी हो जायेगे , दूसरे लफ्ज़ो मे एक भारतीय राष्ट्रवादी होने के नाते आप उन लोगो को कुदरती तौर पर अपना साथी समझते होगे।

नेहरू . इसमे क्या शक है। मिसाल के तौर पर, हिंदुस्तान के बारे मे किसी हिंदुस्तानी की या अंग्रेज की लिखी हुई कोई भी ऐसी किताब जिसमे यह बताया गया हो कि अंग्रेजो की हुकूमत से हिंदुस्तान को क्या नुकसान पहुँचा है, मुझे फौरन पसद आती थी।

मॉड . और रूस मे जो कुछ हुआ उसका पता आपको उसी वक्त चला जब आप इगलैंड मे थे ?

नेहरू नही, वह तो बहुत बाद की बात है । इगलैंड मे अपने शुरू-शुरू के दिनो मे भी इटली के गणतत्र की कहानी का, मैजिनी, कैवूर और गैरिबाल्डी का मुझ पर बहुत असर पडा था, आयर्लैंड के आदोलन का मुझ पर असर पड़ा था, वह तो नजदीक ही था। दरअसल, सिन्न फेइन के शुरू के दिनो मे मैं एक बार आयलैंड गया भी था। मुझे उसमे बडी दिलचस्पी थी।

मॉड मुझे याद नही पडता कि मैंने आपकी किसी किताब मे इसका जिक्र पढा हो।

नेहरू मैं बहुत ही थोड़े अरसे के लिए गया था। मैंने सिन्न फेइन के बारे मे दो-एक किताबे पढी थी।

मॉड आप सिर्फ सैर के ख्याल से गये थे या अपनी दिलचस्पी की वजह से ?

नेहरू : नही, मुझे बस आयलैंड मे दिलचस्पी थी। मैंने दो-एक किताबे पढी थी। इसके अलावा मुझे फ्रास के इनकलाब मे हमेशा से दिलचस्पी रही है। मैंने उसके बारे मे भी कुछ किताबे पढी थी और उससे मेरे दिल मे जोश पैदा हुआ था। एक किस्म का हल्का-हल्का धुँधला-धुँधला, समझ लीजिये, राष्ट्रवाद आजादी के आदोलन, जो एक तरह की बराबरी लाना चाहते थे ये मोटी-मोटी बाते, .एक किस्म का ख्याली समाजवाद था, दरअसल वह वैज्ञानिक समाजवाद बिल्कुल नही था। जहाँ तक रूस के इनकलाब का सवाल है, उस वक्त तो मैं हिंदुस्तान मे था, और अपने वापस लौटने के बाद मैं हिंदुस्तान की कौमी तहरीक मे, भारतीय राष्ट्रीय आदोलन मे फँस गया था। दरअसल, उस वक्त तक गाँधीजी भी मैदान मे आ चुके थे और मुझे ढालने मे उनका बहुत बडा हाथ रहा।

जब हमने पहले-पहल रूस के पहले इनकलाव की, करेंस्की वाले इनकलाब की, खबर सुनी तो जाहिर है हमे वडी खुशी हुई। मै कुछ किताबो मे और दूसरी जगहो पर पढ चुका था कि रूस मे पहले भी इस तरह की कोशिशे हो चुकी थी और यह भी पढ चुका था कि जार की हुकूमत वहुत जुल्म करती थी और सारी हुकूमत एक आदमी के इशारे पर चलती थी। मुझे इस किस्म की वात पर गुस्सा आता था और मेरी हमदर्दी वहाँ की इनकलावी तहरीक के साथ, वहाँ के क्रातिकारी आदोलन के साथ थी। इसमे मार्क्सवाद का किसी किस्म का कोई भी दखल नही था। तो करेस्की वाले इनकलाव मे सिर्फ मुझे ही नही बल्कि आम तौर पर पूरे हिंदुस्तान मे दिलचस्पी पैदा हुई। इसके वाद वाल्शेविको का इनकलाव हुआ जो सचमुच वहुत ही हलचल पैदा करने वाली वात थी। उस वक्त हमे उसके वारे मे वहुत ज्यादा वाते मालूम नही हो सकी, लडाई के फौरन वाद की वात थी और यकीनन लोगो को उसमे वडी दिलचस्पी थी। हालॉकि हम मार्क्सवाद के वारे मे ज्यादा कुछ नही जानते थे फिर भी हमारी हमदर्दी वहुत वडी हद तक लेनिन और उनके दूसरे साथियो के साथ थी। उस वक्त तक मैंने मार्क्सवाद के वारे मे कुछ भी नही पढा था।

मॉंड : रूस मे जो कुछ हुआ था उसके साथ उस वक्त आपकी हमदर्दी सिर्फ उसी सिलसिले की एक कडी थी जिस तरह पहले आपकी हमदर्दी इटली के गणतत्र के साथ, आयर्लैंड के इनकलावियो के साथ या करेस्की वाले इनकलाव के साथ रह चुकी थी

नेहरू . हाँ, और उसके अलावा इसमे यह नया समाजवादी रग भी था। क्योकि लेनिन समाजवाद की इस लहर के नुमाइन्दे थे।

मॉंड उस वक्त तक ये सव वाते वहुत-कुछ धुँधली थी। आपको उनके उसूलो के वारे में वहुत ज्यादा मालूम नही था।

नेहरू धुँधली, हाँ लेकिन वह कुचले हुए लोगो को ऊपर उठा रहे थे और लोगो मे वरावरी पैदा कर रहे थे, पूंजीपतियो वगैरह को मिटा रहे थे। फिर उसके वाद दूसरे मुल्को ने रूस मे दखलदाज़ी की और उस पर लडाई छिड़ गयी और हमारी हमदर्दी, कम-से-कम मेरी तो, पूरी तरह लेनिन और उनके साथियो के साथ थी। इस वार भी, हमे इस वात के वारे में ज्यादा

कुछ मालूम नही था कि वहाँ क्या हो रहा है। शायद आपको यह भी याद होगा कि लेनिन ने, मिसाल के तौर पर, चीन के बारे मे क्या किया था। चीन मे रूसियो को जो खास अख्तियार मिले हुए थे और चीन का जो इलाका रूसियो के कब्जे मे था वह सब उन्होंने फौरन छोड दिया। रूस मे उनका जो आदोलन था उसका एशिया के कुछ हिस्सो पर बहुत गहरा असर पडा। मै एशिया के उन हिस्सो का जिक्र नही कर रहा जो सोवियत मे है बल्कि मेरा मतलब पश्चिमी एशिया की तरफ के मुल्को से है।

पहली लडाई के बाद चर्चिल ने अग्रेजो की हिदुस्तान से कुस्तुनतुनिया तक फैली हुई एक बहुत लम्बी-चौडी मध्य-पूर्वीय सल्तनत की बात भी कही थी। और लडाई के बाद इन मुल्को पर एक तरह से अग्रेजो का कब्जा था भी। मुझे यह बाते पसन्द नही थी। इसलिए इन सब बातो की टक्कर पर मुझे रूस मे जो कुछ हो रहा था वह अच्छा लगा। मुझे इसमे जरा भी शुबहा नही है कि उन दिनो ईरान और तुर्की के लिए और उन तमाम मुल्को के लिए इन बातो से बडा फरक पड गया।

मॉड : उस ज़माने मे, जब आप इलाहाबाद मे थे, क्या आपके दिमाग मे यह बात कभी नही आयी कि रूस मे जिन बातो को आज़माया जा रहा था उन्हे हिदुस्तान के हालात पर भी लागू किया जा सकता है? या आपके नजदीक वह सिर्फ एक दूसरे मुल्क की, एक अतर्राष्ट्रीय बात थी?

नेहरू : सिर्फ इस हद तक कि उसके बाद से मै राजनीति को ओर ज्यादा हद तक समाज को बदलने की नजर से देखने लगा।

वह सिर्फ राष्ट्रवाद की, या जार की हुकूमत जेसी मनमानी हुकूमत के खिलाफ एक लहर नही थी बल्कि लोगो मे एक समाजी तब्दीली आ रही थी। उसका मतलब था ज्यादा बराबरी। जम्हूरियत यानी लोकतत्र और डंडे के जोर से नादिरशाही हुकूमत के बारीक सवालो मे मै नही फँसा, वे मेरे सामने आये ही नही। ये बाते तो बाद मे जाकर मुझमे पैदा हुई।

मॉड यह बात मुझे हमेशा से परेशान करती रही है कि लोग यह क्यो समझते है कि एशिया के इतिहास में उस वक्त एक मोड़ आया जबकि जापानियो के खिलाफ रूसियो की हार हुई। मै हमेशा समझता था कि एशिया मे

आर्थिक योजनाओ की शुरूआत इससे कही बडी बात थी। इस बात का इमकान पैदा होना कि वे लोग भी जिन पर बाहर के देशो की हुकूमत है, अपनी कोशिश से अपने-आपको ऊपर उठाये। क्या इस नये आर्थिक चमत्कार का, आर्थिक योजनाओ का, उस खास वक्त पर आपकी पीढी पर ज्यादा असर नही हुआ?

नेहरू आप ठीक कहते है। लेकिन मै एक बात कहना चाहता हूँ कि बचपन मे मुझ पर जापानियो के खिलाफ रूसियो की हार का बहुत गहरा असर पडा था।

मॉड इसलिए कि एक लडके के लिए आर्थिक योजना के मुकाबले मे लडाई की तस्वीर हमेशा ज्यादा दिलकश होती है?

नेहरू नही, यह बात नही है। शुरू-शुरू के उन दिनो मे, १९०५ मे, आर्थिक योजनाओ का कोई सवाल ही नही था। उस हार का बचपन मे मुझ पर बहुत गहरा असर, मै समझता हूँ, एशिया और योरप के ताल्लुकात की वजह से पडा।

लेकिन आपकी यह बात बिल्कुल ठीक है कि रूसी क्राति के बाद हम लोगो पर जिस बात का सबसे ज्यादा असर हुआ वह यही योजनाओ का ख्याल था, और खासतौर पर हमारे ऊपर जो असर हुआ वह इन खबरो का था कि मध्य एशियाई हिस्सो मे, जो बहुत ही ज्यादा पिछडे हुए थे, कितनी बडी-बडी तब्दीलियाँ हो रही है।

मॉड लेकिन क्या उन दिनो ये खबरे हिदुस्तान के आम अखबार पढनेवालो तक पहुँच पाती थी?

नेहरू कभी-कभी, इक्का-दुक्का खबरे पहुँच जाती थी। मै अब १९२१ और १९२२ की बाते कर रहा हूँ जबकि अफगानिस्तान के उत्तर की तरफ के इन इलाको मे ये तब्दीलियाँ हो रही थी—उजबेकिस्तान मे, समरकद मे और बुखारा मे। लेकिन हमे इनकी सही-सही खबरे नही मिलती थी। खैर, कुछ भी हो, आम तस्वीर यही बनती थी कि वहाँ बडी-बडी समाजी और राजनीतिक तब्दीलियाँ हो रही थी और उनके बारे मे जो ज़ोर-जबर्दस्ती की खबरे आती थी उन पर लोग कुछ यकीन नही करते थे। इसकी शायद

कुछ वजह तो यह थी कि लडाई हो रही थी, जिसकी वजह से और कोई चारा ही नही था, और कुछ वजह यह भी थी कि हमारे पास तक जुल्म और जोर-जबर्दस्ती की जो खबरे आती थी उन्हे हम प्रचार समझकर उन पर यकीन नही करते थे।

मॉड लेकिन उस पीढी के लोग, उन लोगो को छोडकर जो उस जमाने मे हिन्दुस्तान मे कम्युनिस्ट थे, रूस के इस समाजी इनकलाब को अगर एक आदर्श नही, तो क्या एक ऐसा हथियार भी नही समझते थे जिस पर गौर किया जाये ?

नेहरू . वह सन् १९२०-२१ का जमाना था जब हमे पहली बार जेल जाने का तजुर्बा हुआ था। मै इस बात का जिक्र दो वजहो से कर रहा हूँ। पहली बात तो यह कि हम खुद अपने सघर्ष मे पूरी तरह फँसे हुए थे। बाकी हर चीज मे हमे सिर्फ दूर की ही दिलचस्पी थी। और, दिलचस्प वाकयात की बात छोड दीजिये, हमे उन बातो मे सिर्फ उसी हद तक दिलचस्पी थी जिस हद तक कि वह हिदुस्तान पर लागू होती थी। लेकिन हमे अपने मसलो का हर वक्त इतना ख्याल रहता था और हमे अपने-आप पर इतना भरोसा था कि दूसरे मुल्को मे जो कुछ होता था उसके पीछे हम परेशान नही होते थे। हम जानते थे कि हम हिंदुस्तान मे सही रास्ते पर चल रहे है।

मॉड . दूसरे अलफाज मे, उस वक्त भी आपको यह एहसास था कि हिदुस्तान का अपना एक अलग रास्ता है, उसका अपना एक तरीका है ?

नेहरू यकीनन। हमे गाँधीजी पर और गाँधीजी के तरीको पर पूरा-पूरा भरोसा था। इसके अलावा जो भी तरीके थे उन्हे या तो हम पसद करते थे या नापसद, हम समझते थे कि वे दूसरे मुल्को के लिए मुनासिब हो सकते है, लेकिन अपने बारे मे हम यह समझते थे कि हम सही रास्ते पर चल रहे है। दरअसल ऐसा नही था कि हम कोई रास्ता ढूँढ रहे हो। हमारे दिमाग मे यह पस्तहिम्मती नही थी कि आखिर हम क्या करे। हम जानते थे कि हमारा रास्ता सही है और अगर आप इजाजत दे तो मै फख्र के साथ कहूँगा कि हमारा रास्ता सही था भी। हमे एक साथ इन दोनो ही बातो का एहसास था कि हमारा रास्ता इसाफ का रास्ता है। और साथ ही कारगर भी है, जो कि

बहुत खुशकिस्मती की बात होती है। बहुत कम ही ऐसा होता है कि ये दोनो बाते साथ हो और जब ऐसा होता है तो आदमी मे ताकत आ जाती है।

दूसरी बात यह हुई कि जेल जाने से हमे जेल मे आपस मे बहस करने का मौका मिला और हमने किताबे पढी जिसका वक्त हमे बाहर नही मिलता था। और, हॉ, यह बात भी याद रखिये कि गॉधीजी हमेशा दबे-कुचले हुए गरीब लोगो की बाते करते थे। वह यह सब-कुछ अपने ढग से करते थे, समाजवादी ढग से नही, वर्ग-सघर्ष के तरीके से नही, लेकिन वह हमेशा बस दबे-कुचले हुए गरीब लोगो की बात करते थे, खासतौर पर हिंदुस्तान के किसानो की। इसलिए हमारे सोचने का ढग ऐसा हो गया कि हम हिंदुस्तान के किसानो की तरफ दिन-ब-दिन ज्यादा ध्यान देने लगे, कारखानो के मज़दूरो की तरफ भी हम कुछ हद तक ध्यान देते थे लेकिन इतना ज्यादा नही। ज्यादातर ध्यान किसानो की तरफ ही था और ज़मीदारो और दूसरे लोगो के खिलाफ हम बहुत ज्यादा जोर देते थे। इसलिए इस माने मे, समाजी एतबार से हमारे सबके ख्यालात बहुत मजबूत हो गये। तो, इन सब बातो मे रूस की मिसाल का बहुत ज्यादा दखल नही था, उससे हमे सोचने मे मदद जरूर मिली। हम समझते थे कि उससे हम बहुत कुछ सीख सकते है—लेकिन अपने सोचने के ढग को बुनियादी तौर पर बदलने के लिए नही बल्कि उसमे सिर्फ थोडा-सा हेर-फेर करने के लिए।

गॉड . धीरे-धीरे बिना जाने हुए हम उस चौथे किस्म के असर पर आ पहुँचे है जिसके बारे मे हम बाते करना चाहते थे, मेरा मतलब है आप पर गॉधीजी का असर। मै हमेशा से यह समझता आया हूँ कि गॉधीवाद के दो पहलू है—मुझे यह लफ्ज गॉधीवाद बहुत पसद नही है लेकिन उससे हमारा काम आसान हो जायेगा, गॉधीवाद के दो पहलू है एक तो आज़ादी का आदोलन और दूसरा समाजी पहलू। उस शुरू-शुरू के जमाने में, १९२०-२१ में, क्या आप ऐसा समझते थे कि गॉधीवाद मे समाज को ठीक करने का रास्ता भी है और आजादी हासिल करने का भी ?

नेहरू हाँ, हमेशा। राष्ट्रीय आदोलन के नेता बनने से पहले भी, हम कह सकते हैं, वह इस तरीके को आजमा रहे थे—सबसे पहले उन्होने

इसे दक्षिणी अफ्रीका मे आजमाया। वह इसका कौमी पहलू था. हिंदुस्तानी और उनके खिलाफ दक्षिणी अफ्रीका के लोग। इसके बाद जब वह हिंदुस्तान लौटकर आये तो वह किसानो के कुछ सघर्षो मे जूझ गये जिनकी वजह से हमारे सामने फौरन जमीदारो और किसानो का और कुछ नील के खेतो का सवाल आ खड़ा हुआ।

शुरू से ही समाजी पहलू भी इसके साथ था; कुछ खुदगरज ताकतों को हटाना या उनके खिलाफ लडना था। समाजी लडाई-झगडे या वर्ग-सघर्ष के तरीके से नही, लेकिन फिर भी उनके खिलाफ लडना था। इन दोनो बातो मे फर्क करना जरा मुश्किल है। इसका मतलब वर्ग-सघर्ष से इकार करना नहीं था, लेकिन दूसरे आदमी की तरफ हमारा जो रवैया था, वह दोस्ती का रवैया था, लेकिन फिर भी इस रवैये मे समझौतेबाजी के लिए कोई गुजाइश नही थी इस माने मे कि हम उनसे यह कहते थे कि "तुम्हे अपनी खुदगरजी छोड़ना पडेगी।"

सॉंड . आपने जो कुछ लिखा है उससे मुझे यह अदाजा होता है कि आपको वाज मौको पर इसके बारे मे बहुत गहरा शुबहा रहा है कि इस तरीके को समाजी सवालो को हल करने के लिए भी कारगर ढग से इस्तेमाल किया जा सकता है कि नही।

नेहरू : हाँ. .मुझे बहुत-सी बातो के बारे मे शुबहा था। दो किस्म के शुबहे थे। एक तो यह कि क्या सिर्फ अहिसा काफी होगी। इसका ताल्लुक समाजी पहलू के मुकाबले मे अग्रेजो से ज्यादा था। जहॉ तक समाजी पहलू का सवाल था, शुबहे दरअसल इसलिए पैदा होते थे कि मुझे इस बात का पक्का यकीन नही था कि खुद हमारे साथियो को भी समाज के सवालो का इतना ख्याल रहता है कि नही।

इस तरीके के बारे मे मुझे कोई शुबहा नही था। तरीका तो काफी कार-गर था, लेकिन सवाल यह था कि क्या हमारे साथी भी समाज को बदलने के लिए उतने ही बेचैन थे जितना कि मै चाहता था कि वे हो।

सॉंड . साथियो से आपका मतलब राष्ट्रीय आदोलन के दूसरे नेताओ से है?

नेहरू गाँधीजी नही लेकिन दूसरे साथी जो खुद बहुत बडे-बडे नेता थे और जिनकी बात का बहुत असर था। इस किस्म का शुवहा मेरे दिमाग मे अक्सर पैदा होता था। इन सभी लोगो के रास्ते कुछ-न-कुछ हद तक अलग-अलग थे और गाँधीजी ही ऐसे आदमी थे जो इन सब लोगो को एक साथ रख सकते थे। इस बात के अलावा कि सब लोगो को उन पर भरोसा था, इसकी एक वजह यह भी थी कि उन्होने हम लोगो को अपने जज्बात पर काबू रखना सिखाया था। उनकी शख्सियत के कई पहलू थे। मेरे दिल मे जो शुवहे थे उन्हे गाँधीजी ने दूर किया और उन्होने दूसरे लोगो के शुवहो को भी दूर किया।

साँड . इस बात से एक और सवाल पैदा होता है, जो कि मेरी राय मे बहुत ही अहम सवाल है और जिस सवाल को ज्यादातर लोग आपसे पूछना चाहते है वह सवाल है गाँधीजी और आपके ताल्लुकात का सवाल जिसे लोग कभी पूरी तरह समझ नही पाते।

इन ताल्लुकात को पश्चिमी मुल्को की नजर से देखते हुए लोग इस बात को सोच भी नही सकते कि कोई दो आदमी नजरिये, मिजाज और शायद ख्यालात मे भी एक-दूसरे से इतने अलग हो सकते है जितना कि आप और गाँधीजी थे। क्या आप बता सकते है कि वह क्या बात थी जिसकी वजह से और क्यो, गाँधीजी का आप पर इतना असर था?

मुझे याद है कि आपने अपनी जो जीवनी लिखी है उसके आखरी सफो मे एक निराशा, एक मायूसी का रग साफ झलकता है। मुमकिन है कि वह आपके ताल्लुकात का महज एक नाखुशगवार दौर रहा हो। लेकिन उसे पढ-कर यह जरूर मालूम होता है कि आपके दिल मे बहुत गहरे शुवहात थे, आपको उन बुनियादी उसूलो के बारे मे शुवहा था जिसे हम गाँधीवाद कहते है। फिर भी जाती तौर पर गाँधीजी के लिए आपके दिल मे वेइन्तिहा प्यार और लगाव था।

नेहरू . तो इस सवाल का जवाब देने से पहले मै अपने पिताजी के बारे मे कुछ कहना चाहूँगा।

मै समझता हूँ कि मेरे मुकाबले मे उनका गाँधीजी के असर मे आना और

और मुझे तो खैर गाँधीजी ने चारो खाने चित कर दिया। ज़ाती तौर पर गाँधीजी से पहले-पहल मेरा सावका—और शायद मेरे पिताजी का भी—उस ज़माने मे पडा जब पजाव मे मार्शल ला लागू था। हम सब लोग वहाँ साथ काम कर रहे थे। मै एक तरह से गाँधीजी का सेक्रेटरी था। हालत क्या है और इस हालत मे क्या किया जाये, इसके बारे मे उनका जो अदाजा होता था उस पर मुझे कई वार ताज्जुब भी हुआ। शुरू मे तो हम सब लोग उसके खिलाफ होते थे। हम पूछते थे, "आखिर इससे फायदा क्या होगा ?" लेकिन कुछ वक्त बीत जाने पर हमे पता चलता था कि नही वही सही तरीका था। इस तरह धीरे-धीरे हम उनके फैसलो पर भरोसा करने लगे, उनके बुनियादी उसूलो से हटकर भी।

मॉड इस बात पर भरोसा करने लगे कि गाँधीजी का सोचने का ढग हिंदुस्तान की जनता के सोचने के ढग से पूरी तरह मेल खाता था ?

नेहरू · आमतौर पर वह जो भी कदम उठाते थे वह कारगर साबित होता था और इसमे शुबहा नही कि इसकी सबसे बडी वजह यह थी कि वह हिंदुस्तान की आम जनता मे पूरी तरह घुलमिल गये थे। जब उन्होने पहली बार अहिंसा और असहयोग वगैरह का इनकलाबी ख्याल पेश किया तब हिंदुस्तान का शायद ही कोई नेता ऐसा रहा हो जिसने उसकी मुखालफत, उसका विरोध न किया हो। यहाँ तक कि बडे-से-बडे तजुर्बेकार नेता भी इसे बिल्कुल भी न समझ सके। मेरा ख्याल है कि मेरे पिताजी शायद अकेले नेता थे जिन्होने बहुत मुश्किलो के बाद, बहुत सोच-विचार करने के बाद और गाँधीजी से बहस करने के बाद उनकी हिमायत की।

मॉड इस वजह से कि यह ख्याल उनकी समझ में आ गया था या इसलिए कि उन्होंने गाँधीजी को नेता मान लिया था ?

नेहरू · जैसा कि मै पहले कह चुका हूँ यह एक किस्म का त्रिकोण था। मैंने तो गाँधीजी के उस ख्याल को फौरन मान लिया था क्योकि वह मुझे अच्छा लगा था। मैंने कोई दलील नही लडायी। मै तो किसी अमली रास्ते की तलाश मे था। और मै इधर-उधर बम फेकने वगैरह को पसद नही करता था, जैसा कि उस ज़माने के कुछ नौजवान करते थे। मै इसे सरासर बेवकूफी समझता था।

इतने मे गाँधीजी ने एक अमली रास्ता पेश किया। मैंने फौरन उसे कबूल कर लिया। मुझे इसकी परवाह नही थी कि इसका अजाम क्या होगा, मेरे दिल मे तो बस एक जोश था, एक उमग थी। लेकिन मेरे पिताजी पचास से ऊपर हो चुके थे। उस उमर मे आदमी के लिए इस तरह जोश मे आकर किसी चीज़ को अपना लेना ज़रा मुश्किल होता है। इसमे तो शुबहा नही कि कुछ हद तक तो मुझ पर जो असर हुआ था उसी की वजह से उन्हे सोचने पर मजबूर होना पडा था। मैं उनका इकलौता बेटा था, उन्हे मुझसे बहुत लगाव था। लेकिन उनमे जो तब्दीली आयी वह मेरी कोशिशो से नही आयी, उसका सेहरा तो गाँधीजी के सर है; उनमे आपस मे बार-बार जो बातचीत और बहसे हुई उसकी ही वजह से उनमे यह तब्दीली आयी। और यह बात याद रखिये कि गाँधीजी मुझसे हमेशा कहते थे, "अपनी हरकतो से अपने बाप को बहुत तेज़ी से आगे ढकेलने की कोशिश न करो। ऐसी कोई बात न करो जिससे उन्हे तकलीफ हो।" ऐसी बात नही थी कि वह यह चाहते नही थे कि मैं अपने पिता को भी उस रास्ते पर ले आऊँ, लेकिन वह धीरे चलना चाहते थे क्योकि वह मेरे पिता को पूरी तरह अपने साथ ले आना चाहते थे। और आख़िर मे वह इसमे कामयाब भी हो गये।

इस तरह लगातार कई बाते ऐसी हुई जिनसे मेरे पिताजी को सोचना पडा और कुछ हद तक गाँधीजी की समझदारी पर भरोसा करते हुए उन्होने वह कदम उठा ही लिया जिसे दूसरे लोग न उठा सके। वह असहयोग आदोलन के शुरू-शुरू के दिन थे। असहयोग आदोलन मे जो कदम सबसे पहले उठाये जाने वाले थे वे तीन महीने के अदर ही सामने आ गये। चुनाव हुए जिनका हमने बायकाट किया—पूरे हिदुस्तान मे चुनाव हो रहे थे जिनके जरिये अग्रेज अपने कुछ सुधार लागू करना चाहते थे। तो इस बायकाट को हैरतअगेज हद तक कामयाबी हासिल हुई। लोग वोट देने नही गये, बडी मुश्किल का सामना था, और गलत किस्म के लोग चुन लिये गये। लेकिन सवाल यह नही था, किसी ने इस बात की ओर ध्यान भी नही दिया। लेकिन गाँधीजी की इस शानदार कामयाबी से काग्रेस के दूसरे नेता भी उनके साथ आ गये। उन्होने देखा कि हिदुस्तान की जनता पर उनका कितना असर है।

इसके बाद से गाँधीजी काग्रेस पर पूरी तरह छा गये। कुछ लोग, जिनका झुकाव कुछ-कुछ नरमदल की तरफ था, लिबरल और दूसरे लोग, काग्रेस छोडकर चले गये। उसी वक्त जिन्ना ने भी काग्रेस को छोड दिया, उनके काग्रेस को छोडकर चले जाने मे मुसलमानो का कोई सवाल नही था बल्कि सिर्फ इसलिए कि अब काग्रेस बिल्कुल ही नये किस्म का सगठन बनती जा रही थी, जिसके बडे-बडे इजलासो मे अब कोट-पतलून पहननेवाले लोग नही बल्कि "महात्मा गाँधी की जय!" के नारे लगाते हुए किसान और दूसरे लोग आते थे—और इसी तरह की कई बाते थी। .एक नयी इनकलाबी ताकत आगे बढ रही थी। इन सब बातो का हम लोगो पर बहुत गहरा असर पडना लाजिमी ही था। हमने इस शानदार आदोलन को देखा, हम भी उसी का एक हिस्सा थे, हम उसकी लहर मे बह गये और साथ ही हमने भी उसे आगे बढाया। उस वक्त हमारे दिमाग मे उसके कारगर होने के बारे मे कोई शुबहा नही था। शुबहे बाद मे चलकर पैदा हुए और हमने इन शुबहो को या तो दूर कर दिया या समय-समय पर उन्हे ज्यो-का-त्यो छोडकर आगे बढते रहे।

मॉड : लेकिन क्या उस वक्त जबकि आप जैसे नौजवानो को लड़ाई का एक रास्ता मालूम हो गया था, क्या उसी वक्त आप इस बात को समझने लगे थे कि आगे चलकर कौम को बनाने के काम मे, राष्ट्र-निर्माण के काम मे, गाँधीजी के फलसफे को, उनके विचारो को, लागू किया जायेगा ?

नेहरू . हाँ, यकीनन .यकीनन, लेकिन कुछ शर्तों के साथ। मेरा मतलब यह है उनका फलसफा तो अपनी जगह था ही, लेकिन मशीन की तरफ, मेरा मतलब है बडी मशीनो की तरफ, उनका जो रवैया था उसे मैं कभी समझ नही सका। क्योकि मैं बड़ी मशीनो के हक मे था। लेकिन इसके साथ ही उस वक्त हिंदुस्तान की जो हालत थी उसमे छोटे-मोटे घरेलू धधो पर, कुटीर-उद्योगो पर, वह जो जोर देते थे वह मेरी समझ मे पूरी तरह आता था। और इसलिए बडे-बड़े कारखाने कायम करने के बारे मे वह जो कुछ कहते थे उसे सोलहो आने न मानते हुए भी मेरे लिए इतना काफी था कि उस वक्त मसले को ठीक ढग से हल किया जा रहा था।

मॉड : मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ, जो किसी भी बाहर वाले

आदमी के लिए पूछना बहुत मुश्किल है।. .बिल्कुल गैर-जानिबदारी से, बिना कोई पक्ष लिये, पश्चिम वालो की नजर से देखते हुए गाँधीवाद साफ तौर पर दो हिस्सो मे बँटा हुआ दिखायी देता है· पहले आजादी का आदोलन और बाद मे कौम को बनाने का, राष्ट्र के निर्माण का सवाल। इतिहास की दृष्टि से देखते हुए तो इसमे कोई शुबहा ही नही है कि आजादी के आदोलन की हैसियत से उसे बहुत कामयाबी हासिल हुई। पूरी एक पीढी की जो उमगे दबी हुई थी उन्हे लडाई का रास्ता मिल गया। जो लोग गाँधीजी की आत्मा की आवाज पर नही चल सकते थे उनके दिल मे थोडे-बहुत शुबहे भले ही पैदा हुए हो, वे रास्ते से कुछ थोडा-बहुत हट भी गये हो, लेकिन उस आदोलन की कामयाबी मे किसी को शुबहा नही हो सकता। लेकिन अब सवाल आता है दूसरे पहलू का कौम को बनाने का, राष्ट्र-निर्माण का सवाल।

दूसरे लफ्जो मे इस सवाल से हम आजकल की समस्याओ पर पहुँच जाते है। मान लीजिये कि गाँधीजी अभी हम लोगो के बीच मौजूद है। मै इसे अगर बिल्कुल साफ-साफ अलफाज मे कहूँ—और मैं इतने नाजुक मसले को इतने भोडे तरीके से साफ-साफ कहने की माफी चाहता हूँ—तो गाँधीवाद का एक तो उसूली पहलू है और एक दूसरा पहलू है जो, अगर आप मुझे यह कहने की इजाजत दे,—गैरसाइसी है। उसूली पहलू मे कभी-कभी ऐसा लगता है कि गाँधीवाद मे नकारात्मक तत्व बहुत है, बजाय यह कहने के कि ऐसा होना चाहिये ज्यादा जोर इस बात पर दिया गया है कि ऐसा नही होना चाहिये। शायद अपनी बात को साफ तौर पर समझाने के लिए मै कुछ बढा-चढाकर कह रहा हूँ। लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता था कि गाँधीवाद "नेक गुलामो" के लिए लडता है। अकसर उसमे अपनी बात पर अटल रहने की और उस तामीरी उमग की, उस सृजनात्मक उमग की कमी पायी जाती थी जो आदमी को इसानी तारीख की, इतिहास की बडी-बडी कामयाबियो की तरफ ले जा रही है। और फिर वह दूसरा पहलू· जिसमे अकसर तर्क को और दलील को रद्द कर दिया जाता था। लोग पूछते है कि क्या इस दूसरे पहलू ने, यो समझ लीजिये कि गैर-साइसी पहलू ने हिंदू धर्म की पुरानी शक्लो को, लकीर का फकीर बने रहने को बढावा नही दिया है?

नेहरू हाँ, यह पहलू है तो   और इस पहलू की वजह से हमें काफी परेशानी भी होती थी।

बिल्कुल शुरू-शुरू मे हमारा आदोलन खिलाफत आदोलन के साथ जोड दिया गया। गाँधीजी को न तो खिलाफत के बारे मे बहुत गहरी जानकारी थी और न ज़ाती तौर पर इन्हे उसमे कोई दिलचस्पी थी। लेकिन चूँकि उन्होने यह महसूस किया कि यह एक ऐसी चीज़ है जिसकी वजह से यहाँ के मुसलनानो मे हलचल है और वह इसे बहुत अहम समझते है, इसलिए उन्होने उनका साथ देना अपना फर्ज़ समझा, और इसका मतलब था मुसलमानो मे सबसे ज्यादा तास्सुबी और सबसे दकियानूसी लोगो का साथ देना।

हममे से बहुत-से लोगो के दिल मे इसके बारे मे तरह-तरह के सवाल उठते थे: "क्या इस किस्म के लोगो का, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, साथ देना ठीक है?" लेकिन गाँधीजी ने उनकी हिमायत की। उनकी बस एक दलील थी कि यह एक ऐसी चीज है जिसे मुसलमानो की बहुत बडी तादाद चाहती है। वे हमारे बहुत अहम भाई है, उनकी हिमायत करना, आखिर तक उनका साथ देना मेरा फर्ज़ है। मैं समझता हूँ कि उससे एका कायम करने के सिलसिले मे तो बहुत कामयाबी मिली लेकिन आगे चलकर उसके बहुत बुरे नतीजे भी हुए और उसकी वजह से मुसलमानो मे वे लोग, जो ज्यादा तास्सुबी थे, जो ज्यादा दकियानूसी थे वे आगे आये। इसमे शक नही कि मुसलमानो के मामले मे गाँधीजी बहुत फूंक-फूंककर कदम रखते थे। मतलब यह कि वह अपने-आपको या अपने ख्यालात को उन पर थोपना नही चाहते थे और वह उनकी बात को हमेशा मान लेते थे बशर्ते कि वे भी उनके अहिसा के उसूल को मान ले। यह बहुत बडी बात थी।

जहाँ तक हिंदुओ का सवाल है, मैं समझता हूँ कि उनके मामले में वह इतना "पीछे की तरफ जानेवाले" आदमी नही थे जितना कि लोग समझते है। मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। हिंदुस्तान मे जात-पाँत के सवाल को ले लीजिये। मैं तो हमेशा से इसके खिलाफ था, और मेरे पिताजी भी इसके खिलाफ थे। और मैंने कई वार गाँधीजी से कहा भी: आप जात-पाँत पर सीधे-सीधे हमला क्यो नही करते? उन्होने कहा कि वह खुद जात-पाँत मे यकीन

नही रखते और जितना मानते है सो बस इस हद तक कि वह अलग-अलग पेशो की एक ऐसी शक्ल है जिसे आदर्श बना लिया गया है, वगैरह; लेकिन वह जात-पाँत की मौजूदा शक्ल को बिल्कुल बुरा समझते थे और कहते थे कि उसे खत्म होना चाहिये। वह कहते थे कि अछूतो के सवाल पर वह जो कुछ कर रहे है उससे वह जात-पॉत की जड बिल्कुल खोखली किये दे रहे है।

आप जानते है उनका काम करने का एक खास तरीका था कि वह एक सवाल को ले लेते थे और उसी पर सारा ज़ोर देते थे। वह कहते थे कि अगर यह छूत-छात मिट जाती है तो जात-पॉत भी मिट जायेगी, इसलिए मै उसी पर सारा जोर दे रहा हूँ। उनकी बात मे भी कुछ दलील थी और हमने देखा कि जो पुराने सुधारक, इन सवालो पर सिर्फ दिमागी बहस करते थे, उनका जनता पर कोई असर नही पडता था। वे लोग सिर्फ हवा मे काम करते थे जबकि गॉधीजी ने जनता मे एक बहुत बडी हलचल पैदा कर दी थी और समाज मे बहुत बडी-बडी तब्दीलियॉ कर दी थी। इसलिए उन्होने छूत-छात के सवाल को लेकर सारा जोर उसी पर लगाया, और आखिर मे चलकर इस सवाल का असर जात-पाँत के पूरे सवाल पर पडा।

मॉड . तो क्या हम यह कह सकते है कि गाँधीजी को कई सवालो मे से बुनियादी बात को निकाल लेने मे कमाल हासिल था?

नेहरू हाँ, आप कह सकते है. लेकिन बात सिर्फ इतनी ही नही थी, उन्हे यह भी कमाल हासिल था कि वह उस कमज़ोरी को पकड लेते थे जिससे सारी बुनियाद को हिलाया जा सकता था।

मॉड आपका मतलब है वह बुनियादी बात जिस पर सारे सवाल का दारोमदार होता था

नेहरू : जी हाँ, जिस पर सारे सवाल का दारोमदार होता था। या जिसे फौजी जबान मे दुश्मन के सबसे कमजोर मोर्चे पर हमला करना कहते है; उसकी मोर्चेबदी को तोडकर घुस जाना। एक बार जहॉ इसमें कामयाबी हो गयी तो समझ लीजिये पूरा मोर्चा टूट गया।

देखिये बात यह है. कि उनका तरीका यह नही था कि आम लोग जिन बातो मे पक्का यकीन रखते हो उन सवालो पर उन्हे छेडकर उनमे झुंझ-

लाहट पैदा की जाये। वह उन बातो को बहुत बडी हद तक इसलिए मान लेते थे कि वह उन पर यकीन रखते थे। फिर भी जब वह किसी एक बात को लेकर उस पर भरपूर हमला करते थे तो उससे सचमुच और सभी सवालो के बारे मे भी लोगो के सोचने के ढग पर असर पडता था। बाद के बरसो मे, उन्होने जो बयान दिये या उनका सोचने का जो ढग था उसमे उन्होने अपने हमले को और फैलाया, लेकिन सारा जोर वह किसी एक खास बात को लेकरउसी पर लगाते थे। आप यह भी याद रखिये कि गॉधीजी अपने लगभग सभी भाषणो मे जानबूझकर इस बात का ख्याल रखते थे कि वे ऐसे न हो कि सिर्फ पढे-लिखे विद्वान् ही उन्हे समझ सके। वह हमेशा इस बात का ख्याल रखते थे कि हिदुस्तान के आम लोगो पर उनकी बातो का क्या असर होगा।

इसलिए वह सीधे-सादे लफ्जो का इस्तेमाल करते थे, वह घरेलू मिसाले देते थे। मिसाल के तौर पर वह हमेशा राम-राज्य की बात कहते थे। आपने पहले राम के बारे मे सुना तो होगा? वह हिदुस्तान की पौराणिक कथाओ के ऐसे नायक है जिन्हे लोग आदर्श मानते है। राम-राज्य का मतलब होता है राम का राज्य, जिसका मतलब है एक ऐसा राज्य जिसमे सबका कल्याण हो। मेरे जैसे आदमी को यह बात ऐसी लगती थी जैसे कोई पुराने जमाने की बहुत पिछडी हुई हालत मे वापस जाने की बात कर रहा हो, लेकिन राम-राज एक ऐसा लफ्ज था जिसे हिदुस्तान का एक-एक गॉववाला समझता था। यह मुमकिन है कि कभी-कभी वह उसे उस माने मे न समझता हो जिस माने मे कि मै चाहता हूँ कि वह समझे, लेकिन फिर भी वह जो कुछ सोचता है उसकी तसवीर इस लफ्ज से उसके सामने आ जाती है। तो जो बात मै कहना चाहता हूँ वह यह है कि गॉधीजी हमेशा जनता के बारे मे सोचते रहते थे और यह ख्याल रखते थे कि हिदुस्तानी क्या चाहते है और वह सही रास्ते पर उन्हे आगे ले जाने की कोशिश करते थे, वह यह कोशिश करते थे कि हिदुस्तानी धीरे-धीरे ज्यादा-से-ज्यादा बातो के बारे मे सोचे लेकिन साथ ही वह इस बात का भी ख्याल रखते थे कि कही वह बिल्कुल ही उलझ न जाये या उनकी हिम्मत बिल्कुल ही टूट न जाये।

मॉड मतलब यह कि वह बहुत दूर तक की योजना बनाते थे, धीरे-धीरे

लोगो के दिमागो को एक नये साँचे मे ढालने और उनमे एक खास रवैया पैदा करने का रास्ता तैयार करते थे।...

नेहरू : हाँ, यकीनन यह बहुत दूर तक ले जानेवाला रास्ता तो होता था, लेकिन साथ ही फौरन अमल करने का भी रास्ता होता था। इस पर अमल फौरन किया जाता था। आप करोडो लोगो को एकदम से नये तरीके से सोचने पर मजबूर नही कर सकते; आप उन्हे अचानक उस समाजी ढाँचे से अलग नही कर सकते जिसकी उन्हे सैकडो-हजारो बरसो से आदत पड चुकी है।

गाँड . तो इसका मतलब यह है, अगर आप मुझे यह कहने की इजाजत दे, कि गाँधीजी ने आपको "रूहानी ताकत" नही दी बल्कि आपको एक रास्ता बताया, एक तरीका सिखाया, और यह सिखाया कि किसी काम को करने के जो तरीके हो वह हमेशा अच्छे होने चाहिये।

नेहरू जी हाँ, लेकिन मै एक बात यह बता देना चाहता हूँ कि गाँधीजी से मेरे जो मतभेद थे उनके बावजूद मै दिन-ब-दिन इस बात पर ज्यादा यकीन करने लगा कि गाँधीजी एक सही किस्म की बहुत बड़ी इनकलाबी ताकत है। यानी एक ऐसी ताकत जो सिर्फ थोडे-से गिने-चुने लोगो को नही बदलती बल्कि सभी लोगो को अपनी लपेट मे ले लेती है।

आप जो "रूहानी ताकत देने" की बात करते है तो मेरे लिए इस सवाल का जवाब देना कुछ मुश्किल है। लेकिन मोटे-मोटे तौर पर मै यह जरूर कहूँगा कि उन्होने मुझे एक खास किस्म की "रूहानी ताकत" दी—मोटे तौर पर; उस माने मे नही जिसमे कि मजहबी लोग "रूहानी ताकत" का मतलब समझते है।

खैर, फिर वह सवाल है जिसका आपने अभी ज़िक्र किया है कि किसी काम को करने के लिए कौन-से तरीके इस्तेमाल किये जाये। मुझमे यह यकीन पैदा होता गया कि यह बात हमेशा बहुत अहमियत रखती है और यही बुनियादी बात होती है कि कौन-से तरीके इस्तेमाल किये जाये, हालाँकि यह कुदरती बात है कि सियासत मे, राजनीति मे आदमी को हमेशा दो बुराइयो मे से जो कम बुरी हो उसे चुनना पडता है। कोई नेता अपने-आपको जनता से अलग नही कर सकता, बिल्कुल अलग नही कर सकता। मुमकिन है कि वह

उनसे कुछ फासले पर हो, उन्हे अपनी ओर खीच रहा हो या उन्हे आगे ढकेल रहा हो। लेकिन अगर वह अपने-आपको उनसे बिल्कुल अलग कर लेता है तो वह वडा आदमी भले ही हो लेकिन नेता नही है। वह हालात से वाकिफ नही रह जाता, उसका हाथ वक्त की नब्ज पर नही रह जाता। इसलिए उसे समझौता करना पडता है। लेकिन असल वात तो यह है कि उसे किसी बुनियादी उसूल पर समझौता नही करना चाहिये।

शुरू-शुरू मे मुझ पर गाँधीजी का जो असर पडा उसका नतीजा यह हुआ कि मेरी जिदगी मे बहुत सादगी आ गयी। मिसाल के तौर पर मैंने सिगरेट पीना छोड दिया। मैने कोई पॉच-छ साल तक सिगरेट नही पी। मै नही समझता कि इसकी वजह सिर्फ यह थी कि मै अपने-आपको "वेहतर" बनाना चाहता था, बल्कि इसकी तीन वजहे थी। एक तो यह कि मैने सोचा कि मै पैसा बरबाद करता हूँ। हिदुस्तान एक गरीब मुल्क है। मै जो थोडा-बहुत पैसा इस पर खर्च करता हूँ उसे किसी ज्यादा अच्छे काम मे लगाया जा सकता है। दूसरा था अपने ऊपर काबू रखने का, डिसिप्लिन का ख्याल यह ख्याल कि आखिर मै आदत का गुलाम क्यो हूँ? तीसरे यह कि अगर मुझे सबके सामने सिगरेट पीना पसद नही तो मै अकेले मे क्यो पिऊँ। मतलब यह कि मै सबके सामने भीड मे, सिगरेट पीना नही चाहता था, इसलिए किसी ऐसे काम को, जिसे मै सबके सामने नही करना चाहता था, छुपकर करना ईमानदारी की बात नही थी।

मॉड क्या इस नयी नैतिक प्रेरणा के असर मे आप मुख्तलिफ बातो के वारे मे अपने रवैये को नये सिरे से जाँच रहे थे?

नेहरू हाँ, नैतिक प्रेरणा तो थी। मैने गोश्त खाना भी छोड दिया। इसका फलसफे से कोई ताल्लुक नही था। इससे मेरे रहन-सहन में सादगी पैदा हो गयी और उसके साथ ही मै कुछ कमखर्च हो गया। गाँधीजी ने बहुत-से लोगो पर इस तरह का असर डाला। इससे हमारा रहन-सहन का पूरा तरीका वदल गया। इसके अलावा मैने अकसर गीता पढी थी और वह मुझे अच्छी लगी थी। मैने उसे कई वार पढा। फलसफे या मजहब की नजर से नही वल्कि उसके कई हिस्से ऐसे थे जिनका मुझ पर वहुत गहरा असर पडा।

मसलन इस किस्म की बाते कि अगर आदमी अच्छे काम करता है तो उसका नतीजा भी अच्छा ही होता है।

धीरे-धीरे मैं इस ख्याल पर गौर करने लगा कि मैं अपने सोचने के साइंसी ढग को इस तरफ क्यो न लगाऊँ और मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कुदरती बात है कि हर काम का एक नतीजा होता है। हर अच्छे काम का उसी हद तक अच्छा नतीजा होना चाहिये, हालाँकि ऐसा होना यकीनी नही है, और फिर कही-न-कही जाकर हर बुरे काम का बुरा नतीजा भी होना चाहिये।

मॉड : लेकिन इस खास दौर मे आप मे जो ये ख्यालात पैदा हुए, उसकी वजह से—रूस मे जो कुछ हो रहा था उसकी कशिश के बावजूद—साइंसी समाजवादी उसूलो की तरफ आपका जो कुछ-कुछ झुकाव था उसके और इस शानदार नयी हकीकत के बीच, सही तरीको की इज्जत करने के बीच क्या एक साफ दरार नही पड गयी ? क्या इसकी वजह से आप छोटी-मोटी दिमागी कशमकश मे नही पड गये ?

नेहरू . मैं नही समझता कि ऐसी कोई बात हुई हो, उस किस्म की कोई कशमकश पैदा नही हुई क्योकि सोशलिज्म मे, समाजवाद मे मेरा यकीन दिन-ब-दिन बढता गया। कुछ हद तक कम्युनिज्म मे भी, साम्यवाद मे भी मेरा यकीन बढता गया, उसके अमली पहलू मे नही बल्कि उसके उसूलो मे . आगे चलकर कभी कम्युनिस्ट समाज के कायम होने मे। लेकिन इसके साथ हमेशा मेरी शर्त यह रही है कि जो रास्ता इसके लिए अपनाया जाये वह अमन का रास्ता हो, शांति का रास्ता हो, मोटे-मोटे तौर पर शांति का रास्ता हो, और कोई गलत तरीके न इस्तेमाल किये जाये। यह कहना मुश्किल है कि इन दोनो चीजो का एक साथ होना मुमकिन है कि नही।

लेकिन मुझे इस बात का पक्का यकीन है कि कुछ कम्युनिस्ट समाजों मे जो तरीके इस्तेमाल किये जाते है, मेरा मतलब है बहुत ज्यादा जोर-जबर्दस्ती और जुल्म करने के जो तरीके है, वह सही तरीके नही है। अलबत्ता मैं इस बात को समझ सकता हूँ कि कुछ खास हालात मे कुछ बातें हुई। किसी को इसके लिए इल्जाम देने से कोई फायदा नही। मिसाल के तौर पर मैं इस बात को समझ सकता हूँ कि रूस मे जिस वक्त इनकलाब हुआ उस वक्त रूस लडाई मे

कता हो जायेगी जब तक आप उसकी जगह कोई दूसरी चीज न लाकर रख दे

तो गॉधीजी ने सघर्ष मे, आदोलन मे यह सख्त डिसिप्लिन पैदा किया और हम लोग तादाद मे तो बहुत थे ही, हमारा सगठन भी बहुत बडा हो गया। सिर्फ यही बात नही थी कि हमारे सगठन मे डिसिप्लिन थी, बल्कि हमने इससे भी बडी बिरादरी की शक्ल अख्तियार कर ली थी जिसमे एक-दूसरे के साथ सबके ताल्लुकात बहुत गहरे थे, आप कह सकते है कि हमारा सगठन एक बहुत वडा परिवार था। और इस परिवार मे एका गॉधीजी ने कायम किया था। उसमे अलग-अलग सवालो पर लोगो की अलग-अलग राये थी लेकिन जहाँ तक अग्रेजो के खिलाफ लडने का सवाल था सबकी राय एक थी। आपस मे इस किस्म के बिरादरी जैसे रिश्तो की वजह से हम एक-दूसरे को बर्दाश्त करते थे और जिन लोगो से हमारा मतभेद भी होता था उनकी भी हम इज्जत करते थे। आगे चलकर हमे इससे बहुत ज्यादा मदद मिली। आप देखते है कि दूसरी पार्टियो मे जहॉ कोई मतभेद होता है वे दो टुकडो मे बँट जाती है और उनमे अपनी राय के आगे किसी की न सुनने का रवैया पाया जाता हे। काग्रेस की बुनियाद इतनी लम्बी-चौडी थी कि उसमे इस किस्म की तग-नजरी की गुजाइश ही नही थी।

मॉड क्या यह बात सब लोगो के बारे मे सच है या सिर्फ उन इने-गिने लोगो पर लागू होती है जो गॉधीजी की पीढी के थे।

नेहरू हॉ, वह एक तरह से सभी लोगो पर लागू होती थी, लेकिन यह जरूर है कि जो लोग गाँधीजी की पीढी के थे उनके बारे मे यह बात ज्यादा सच थी, और धीरे-धीरे यह बात कम होती जायेगी। क्योकि हम लोग तो सघर्ष के दिनो से ही एक-दूसरे के साथ बँधे हुए है। जैसे-जैसे हम लोग मरते जायेगे, नये लोग हमारी जगह लेते जायेगे। वे लोग भी कुछ हद तक तो हमसे यह सीखेगे, लेकिन धीरे-धीरे यह रग हल्का पडता जायेगा। दूसरी ताकते मैदान मे आयेगी—वह कौन-सी ताकते होगी, मै कह नही सकता। पिछले दस बरसो से हम इसी बात के सहारे काम करते आये है। जैसा कि आजादी की लडाई के दिनो मे होता था, हम इस बात की वजह से इस जमाने मे भी हमेशा कोई-

न-कोई ऐसा रास्ता निकालने मे कामयाब हुए जिसमे हम सब लोग मिलकर साथ काम कर सके। मतलब यह कि जब हमारी राय किसी सवाल पर एक न भी हो तब भी हम अलग-अलग हिस्सो मे बँट न जाये। हम साथ मिलकर काम करते रहे। आप इसे यो समझ लीजिये कि हमने एक ऐसा तरीका निकाल लिया जिससे हम हमेशा कोई ऐसा रास्ता ढूँढ लेते थे जिसे सब लोग मानने पर तैयार हो। हमारे रवैये मे यह बात थी कि कही पर दूसरे के सामने हम दब गये और कही पर हमारी बात के आगे दूसरा दब गया। हम उतनी आसानी से अलग-अलग हिस्सो मे बँट नही जाते थे जैसे कि बाये दल के आदोलन या समाजवादी आदोलन उसूलो या सिद्धातो के सवाल पर बँट जाते है।

उसके बाद आजादी आयी। आजादी के साथ ही मुल्क का बँटवारा भी हो गया और उसके बाद पाकिस्तान मे और उत्तरी हिदुस्तान मे बहुत खून-खराबा हुआ और लोगो पर बहुत बडी-बडी मुसीबते आयी। वह एक ऐसा खौफनाक तजुर्बा था जिससे हम लोगो के दिल बिल्कुल टूट गये। मुझे इसमे ज़रा भी शुबहा नही कि गाँधीजी को इसकी वजह से बहुत तकलीफ हुई। उन्हे तो ऐसा मालूम हुआ जैसे उनके जिदगी भर के काम पर पानी फिर गया... दोनो तरफ से जो हजारो-लाखो लोग मारे गये और उसके पीछे जो नफरत छिपी हुई थी इन बातो की वजह से। उन्हे सबसे ज्यादा परेशानी इस नफरत की वजह से थी। मुझे याद है कि उन्होने एक बार कहा था कि "अगर कोई अपने दिल मे तलवार छुपाये हो तो उसे दिल मे छुपाये रहने से तो कही अच्छा है कि वह उसे निकालकर चला दे।"

उनके लिए यह बहुत ही तकलीफदह बात थी और इसके कुछ ही दिन बाद तो वह मर गये—उन्हे मार डाला गया। लेकिन यह सब-कुछ हमारे लिए एक बहुत बडा तजुर्बा था।

खैर, हम लोगो ने किसी तरह यह बोझ अपने दिल पर से उतारा। यह बोझा उतर जाने से हमारी ताकत कुछ और बढी, हमारे दिल कुछ मजबूत हो गये, हमे ऐसा लगा कि हमने एक ऐसा बोझ अपने ऊपर से उतार दिया है जिससे भारी बोझ कभी भी हमारे ऊपर नही गिर सकता; अब हम हालत ऐसी बुरी कभी नही होने देगे। तो इस तरह हमारे दिलो मे अपने-आप पर

भरोसा पैदा हुआ, अपने देश की जनता पर भरोसा पैदा हुआ। उसके बाद से तो दरअसल रोज़मर्रा के सवालो मे ही सारा वक्त जाने लगा, बहुत आगे की बात सोचना एक तरह से छूटता गया और धीरे-धीरे हम राजनीति की सतह से आर्थिक और समाजी सवालो की सतह पर आते गये वही सवाल हमारे सामने थे।

शुरू से ही, जब मै सरकार का अग बना उसके कोई महीने भर के अदर ही, हम लोग योजना बनाकर काम करने की बात सोचने लगे। पहले भी मै प्लैनिंग कमीशन का मेम्बर था। हमने कई कमेटियाँ वगैरह भी बना दी .. लेकिन असल काम को कुछ दिन के लिए टाल देना पडा क्योकि कोई साल भर तक हम इन मुश्किलो और परेशानियो को हल करने मे पडे रहे। ये सब सवाल मिलकर कश्मीर के झगडे मे और इसी तरह के दूसरे झगडो मे मिल गये। कोई साल भर तक तो हम इसी मे फँसे रहे कि किसी तरह अपने-आपको इस मुसीबत मे डूब जाने से बचाये रखे।

इसके बाद धीरे-धीरे हमे कुछ इतमीनान मिला और हम अपने सवालो को हल करने की कोशिश करने लगे। इसमे भी सबसे पहले हमारे सामने शरणार्थियो का सवाल था जिसे फौरन हल करना जरूरी था, उनकी तादाद बहुत ज्यादा थी, कोई सत्तर लाख रहे होगे। यह सिलसिला दो-तीन साल तक चलता रहा। फिर खाने-पीने की चीजो की कमी का सवाल था और इसी तरह के दूसरे सवाल थे। आखिरकार हमने सचमुच योजना बनाने का काम शुरू किया, जिसके नतीजे के तौर पर पहली पचवर्षीय योजना तैयार हुई कोई बहुत बडी योजना नही थी वह, फिर भी एक कोशिश थी। यहाँ भी, इस काम मे भी, लोगो की अलग-अलग राये थी, उनमे टक्कर होती थी, उसमें से कोई रास्ता ढूंढ निकालने की कोशिश हो रही थी—सब रास्तो को मिलाकर एक रास्ता मालूम करने की कोशिश, इस धमकी के साथ नही कि "या तो यह करना होगा नही तो यह", बल्कि काम चलाते रहने के लिए कभी-कभी कुछ नीचे उतरकर भी किसी बात को मान लेना, और कभी दूसरो को कुछ ऊपर चढने पर मजबूर करना और इस तरह धीरे-धीरे हमारा काम चलता रहा है।

अब आप अगर मुझसे यह पूछना चाहते हैं कि मुझमें क्या तब्दीलियाँ हुई है तो मेरे लिए शायद इस सवाल का जवाब देना बहुत मुश्किल है क्योंकि मेरी ज़िंदगी मे सिर्फ एक बडी तब्दीली हुई है और वह भी पलक मारते हो गयी. और उस तब्दीली की बुनियाद थे गाँधीजी। आप कह सकते है कि उसके बाद से मेरी जिंदगी का, मेरे ख्यालात का भी और मेरी बाहरी जिंदगी का भी रुख ही बिल्कुल बदल गया। .उसके बाद से जो तब्दीलियाँ हुई है वह इतने धीरे-धीरे हुई हैं कि पता भी नही चला और जिस वक्त ये तब्दीलियाँ हुई उस वक्त अगर कोई मुझसे पूछता तो शायद मैं बता भी न पाता कि कोई तब्दीली हुई भी है कि नही। लेकिन इससे तो इकार नही किया जा सकता कि जब आदमी अब से समझ लीजिये बीस बरस पहले की अपनी बातो पर नजर डालता है तो वह अपने-आपसे सवाल करता है, अब मेरी क्या राय है उन बातो के बारे मे ?

कोई एक महीना हुआ मै एक खत पढ रहा था जो बहुत अरसा हुआ मैंने गाँधीजी को लिखा था।* यह खत छप भी चुका है। शायद आपको इस खत मे दिलचस्पी हो।. .यह खत मैंने बहुत गुस्से में लिखा था...

मॉड . कब लिखा था यह खत आपने ?

नेहरू . जब मैं अपनी बीवी की बीमारी की वजह से दस दिन के लिए जेल से बाहर आया था। आपको उसमे गुस्सा दिखायी देगा। उसमें खास तौर पर समाजी सवालो पर रोशनी डाली गयी है। मैंने गाँधीजी को लिखा था, आप इन सवालो के बारे मे जो कुछ कहते हैं, उससे आखिर आपका मतलब क्या है ? काग्रेस वर्किग कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया था जिसमे सोशलिज्म की या समाजवादी विचारो की कुछ बुराई की गयी थी। बहुत गुस्से से भरा हुआ खत था वह, बहुत लम्बा-सा खत था।

मै कह नही सकता कि मै उस ज़माने के मुकाबले मे बहुत बदल गया हूँ। लेकिन होता ही है कि जब आदमी कोई ज़िम्मेदारी सँभालता है तो उसका

---

*यह खत जवाहरलाल नेहरू ने १३ अगस्त १९३४ को गाँधीजी को लिखा था और यह डी० जी० तेंदूलकर द्वारा संकलित अंग्रेजी में गाँधीजी की आठ खडो वाली जीवनी के तीसरे खंड में प्रकाशित हुआ है।

मिज़ाज कुछ नर्म पड जाता है, उसमे सजीदगी आ जाती है। उसे दूसरो को साथ लेकर चलना पडता है। मेरे सामने हमेशा यह मुश्किल रहती है कि मै लोगो को अपने साथ लेकर नही चल पाता। और वातो को तो जाने दीजिये जव मै किसी को अपनी वात समझा नही पाता, तो मुझे वहुत वुरा लगता है, इस वात पर कि मै उसे अपने साथ नही ले चल सका।

मॉड आर्थिक योजनाएँ चलाने मे शायद अक्सर मजिल और रास्ते का सवाल उठ खडा होता है यानी यह कि हम क्या करना चाहते है और उसके लिए हम कौन-से तरीके इस्तेमाल करे। .तेज़ी से काम करने का सवाल वहुत वडा सवाल होता है।

नेहरू . नही यह वात नही है। . तेजी से काम करने का सवाल तो खैर होता ही है। लेकिन आर्थिक योजनाएँ चलाने मे मज़िल और रास्ते के सवाल से आपकी क्या मुराद है? हम एक जम्हूरी ढाँचे, लोकतात्रिक ढाँचे के अदर रहकर काम कर रहे है। अगर पार्लियामेट किसी वात को मान लेती है तो वही जम्हूरी तरीका है, वही लोकतत्र का रास्ता है। जव भी कोई तव्दीली होती है तो उससे कुछ लोगो को तकलीफ तो होती है, हर समाजी तव्दीली। .

मॉड और तव्दीली न होने का मतलव यह हो सकता है कि और ज्यादा लोग तकलीफें उठाये

नेहरू जी हाँ, तकलीफे उठा रहे है लोग। लेकिन आप इस तरह से देखिये वरावरी पैदा करने के लिए, चाहे आप उन पर टैक्स वढा दे, जिससे उनकी तकलीफें कुछ थोड़ी-सी वढ जाती है, या चाहे आप जमीदारो से उनकी ज़मीन-जायदाद ले ले हम उन्हें मुआवज़ा देते है लेकिन जाहिर है कि यह मुआवज़ा पूरा नही होता है। मतलव यह कि हम वीच का कोई रास्ता निकालने की कोशिश करते है, हम जवर्दस्ती उनसे उनकी जमीन-जायदाद छीन नही लेते। आर्थिक योजनाएँ चलाने मे, मजिल और रास्ते का सवाल नही उठता। मेरा मतलव है कि जम्हूरी निज़ाम मे, लोकतात्रिक व्यवस्था मे यह सवाल पैदा नही होता। अगर आप किसी वात को इस निजाम से, इस व्यवस्था से मजूर करा लें, तो सव-कुछ ठीक है

श्रॉड . यह तो ठीक है लेकिन मैं समझता हूँ कि आपको इस मुल्क में लोग इतना मानते है कि आपको इस बात की जरूरत ही नही कि लोगो से जबर्दस्ती अपनी बात मनवाये या किसी को गोली से उडवा दे; मुल्क मे आपकी इतनी साख है कि आप इस लोकतान्त्रिक ढाँचे को भी ठोक-पीटकर जैसा चाहे ढाल सकते है। प्रधान मन्त्रीजी, आप मुझे माफ करे, एक बार अपने एक मजमून मे मैने आपकी मिसाल एक ऐसे बुततराश से, एक ऐसे मूर्तिकार से दी थी जो रवादारी और पच्छिमी मुल्को के उदारवाद जैसे नाज़ुक औजारो से पत्थर के एक बहुत बडे टुकडे को काटने की कोशिश कर रहा है। अगर आप ज्यादा देर इतजार नही कर सकते, और आप चाहते हैं कि वह पत्थर जल्दी-से-जल्दी उस मूरत की सही-सही शक्ल अख्तियार कर ले, इस ख़्याल से अगर आप हथौड़े का, घन का इस्तेमाल करना चाहे और एक भरपूर चोट लगाना चाहे तो उस सूरत मे तो कुछ भले-बुरे का सवाल ज़रूर पैदा हो जाता है। उस वक़्त मजिल और रास्ते का सवाल उठता है।

नेहरू : दरअसल. मैं कह नही सकता .उस ख़ास सूरत मे मुमकिन है कि ये सवाल उठते हो।

देखिये, बात यह है जब कोई कार्रवाई की जाती है तो उसमे एक-दूसरे के अदर छोटे-बडे कई हलके होते है जो सब अपनी-अपनी जगह पर अपना-अपना काम करते रहते हैं, सबसे पहले हिदुस्तान की आम जनता है, बहुत बडी जनता है वह। और यह बात कुछ अजीब तो मालूम होगी लेकिन मुझे सीधे उनके साथ बातो को तै करने मे बडी आसानी होती है। मैं उनसे काफी खुलकर बाते करता हूँ। छोटी-छोटी कमेटियो के मुकाबले मे बडी भीड के सामने मैं अपने दिल की बात हमेशा ज्यादा खुलकर रख सकता हूँ। मुझे ऐसा महसूस होता है कि मेरे दिल मे उनसे खुलकर बात करने की एक ख्वाहिश रहती है क्योंकि वह मेरे साथ खुलकर बाते करते हैं। हालाँकि मुझमे और उनमे बहुत फर्क है लेकिन उनके साथ मैं एक ख़ास किस्म का अपनापन महसूस करता हूँ। फिर बडी-बडी कमेटियाँ होती है। मिसाल के तौर पर काग्रेस है जिसके काम मे हजारो लोग हिस्सा लेते है, फिर समझ लीजिये पाँच सौ आदमियो की कमेटी होती है, फिर यह पद्रह आदमियो का मन्त्रिमडल है—तो

इस तरह एक-दूसरे के अदर ये छोटे-बडे हलके एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करते रहते है, लेकिन फिर भी वे सब अलग-अलग अपनी-अपनी तरफ भी खीचते रहते है।

मुमकिन है लोग मुझे बहुत मानते हो। और यह सच भी है। लेकिन मैं अकेला अपनी मर्जी से तो काम नही कर सकता। मुझे अपने साथियो के साथ, दूसरे लोगो के साथ मिलकर काम करना पडता है, मुझे उन्हे अपने साथ लेकर, या उनके साथ होकर चलना पडता है। बात यह है कि बहुत-सी बाते होती है जिनका आदमी के काम पर असर पडता है और जिनकी वजह से उस पर कुछ पाबदियाँ भी लग जाती है।

सॉंड हम एक बहुत अहम सवाल पर आ गये है और मैं उम्मीद करता हूँ कि हम किसी दूसरे मौके पर उस पर ज़्यादा तफसील के साथ बाते करेंगे। वह सवाल है हिंदुस्तानी ढाँचे मे जम्हूरी निज़ाम का, लोकतान्त्रिक व्यवस्था का सवाल।

लेकिन आपने अभी जो इस बात का जिक्र किया है कि आपके दिल मे जनता के बीच रहने की एक कुदरती ख्वाहिश है, तो जनता के साथ रहने से क्या आपके दिल में कभी यह शुबहा नही पैदा होता कि आपके और जनता के बीच जो सस्थाएँ कायम है उनकी वजह से काम की रफ्तार धीमी हो जाती है?

नेहरू पैदा होता है जरूर पैदा होता है लेकिन मैं जानता हूँ कि कुछ सस्थाओ का होना बिल्कुल ज़रूरी है। वरना चारो तरफ गडबड़ी फैल जाये, किसी पर कोई रोकथाम ही न रह जाये।

सॉंड अच्छा, एक बार आपने अपने एक गुमनाम मज़मून मे, जिसका इतने लोग अब तक चर्चा कर चुके है कि मुझे यकीन है कि आप पछताते होगे कि आपने वह मज़मून लिखा ही क्यो—उस मजमून मे आपने लिखा था कि आपका कुछ झुकाव डिक्टेटर बनने की तरफ है, जिसका मतलब है कि आपमे एक खास किस्म की बेसब्री है

नेहरू . यह बात तो है। . वह मज़मून मैंने, कहना चाहिये, बिल्कुल मज़ाक मे लिखा था, एक तरग थी, मुझे उस खत को लिखने मे मज़ा आया। मुझे याद है कि मैंने एक दिन रात को यो ही बैठे-बैठे अपना दिल खुश करने

के लिए वह खत लिख डाला था; और वह खत मैंने अपने एक दोस्त को भेज दिया था। मैंने उसे टाइप तक नही करवाया था। उसके बाद बगैर मेरा नाम दिये उन्होने उसे एक रिसाले के पास भेज दिया और वह छप गया। साल-दो साल तक तो किसी को पता भी नही चला कि वह खत किसने लिखा था।

मुझे यह जानने मे बड़ी दिलचस्पी थी कि लोगो पर उसका क्या असर हुआ।

मॉड : इसी दिशा मे अगर हम कुछ और आगे जाये, तो हाल ही मे आप जो रूस और चीन का दौरा करके आये है उसके हालात पढने से यह मालूम होता है कि आपने जो कुछ देखा उसकी आपके दिल पर बहुत गहरी छाप पडी। आप पर इस दौरे का जो असर हुआ है उसे देखते हुए अगर हम इस बात पर गौर करे कि हिंदुस्तान मे काम करने का जो जम्हूरी या लोकतात्रिक तरीका है उसमे पहले कानून बनाने और फिर उसके मुताबिक काम करने की वजह से बहुत धीमी रफ्तार से ही तरक्की हो सकती है; उस सिलसिले मे आप अपने इन मुल्को के दौरे से क्या नतीजे निकाल सकते है?

नेहरू : यह बहुत बडा सवाल है। हम बाद मे इस पर गौर करेगे। लेकिन इस वक्त मै इतना ही कहूँगा.

इस बहुत बडे सगठन के असर को देखते हुए, मेरा मतलब काग्रेस से है, और खुद अपने असर को देखते हुए मै कह सकता हूँ कि शायद ही कोई ऐसा काम हो जिसे हम यहाँ जम्हूरी तरीके से पूरा न कर सकते हो। दूसरे मुल्को मे मुमकिन है, हालत इससे बिल्कुल अलग हो।

यहाँ, जहाँ तक जनता का सवाल है, वह उस हद तक जाने को तैयार है जिस हद तक आप उसे ले जा सकते हो। वह रास्ते मे कभी रुकावट नही डालेगी। रुकावट तो कुछ निजी हितो मे पडे बडे-बडे पैसेवाले और दूसरे लोग डालते है। मै "पैसेवालो" को बुरा नही कह रहा। मै इन "पैसेवालो" को बदलना चाहता हूँ। मै उन्हे जड से उखाड फेकना नही चाहता। दरअसल मेरा ख्याल तो यह है कि दूसरे मुल्को के मुकाबले मे यहाँ हिंदुस्तान मे अगर उनसे कोई बात समझाकर कही जाये तो वह ज्यादा आसानी से मान जाते है। मुमकिन है ऐसा जनता के दबाव की वजह से होता हो; या मुमकिन है कि

हमारा आदोलन जिस तरह से आगे बढा है उसकी वजह से एसा हो। मुमकिन है कि वे इस बात को समझने लगे हो कि इतने बडे आदोलन के खिलाफ जाने से कोई फायदा नही। कुछ भी हो, वे बात मान लेते है। अपनी ताकत भर वह दबाव डालने की कोशिश तो करते है, लेकिन अगर कोई बात कर दी जाती है तो उसे वे मान लेते है।

इसलिए मै समझता हूँ कि हम जम्हूरी तरीके से, लोकतान्त्रिक तरीके से आगे बढ सकते है। दरअसल, अगर मुझसे पूछिये तो ज्यादा दिक्कत "सरमायादारो" या किसी खास गिरोह या जमाअत की वजह से नही होती बल्कि दिक्कते पैदा होती है किसी काम को चलानेवाली खुद इन छोटी-छोटी जमाअतो मे अलग-अलग लोगो की अलग-अलग राय होने की वजह से, जैसे सरकार मे या ऐसी ही दूसरी जमाअतो मे, अलग राय होने का मतलब यह नही है कि वे लोग खिलाफ होते है, लेकिन फर्क तो होता ही है। लेकिन माफ कीजियेगा, मुझे अब जाना है।

भाँड अच्छी बात है, प्रधान मत्रीजी अगर आप इजाजत दे तो आज की बातचीत का सिलसिला खत्म करते हुए मै आपसे एक बहुत ही जाती किस्म का सवाल पूछूँगा

एक बार मैने एक कहानी पढी थी, जिसमे सडक पर एक अधेड उम्र के आदमी की मुलाकात एक नौजवान से हो जाती है, उनमे बातचीत शुरू होती है और वह नौजवान आदमी उस अधेड उम्र के आदमी पर सवालो की बौछार शुरू कर देता है, जैसा कि हर नौजवान की आदत होती है। उसके सवाल भी शिकायतो और दूसरो को कसूरवार ठहराने की कोशिशो से भरे हुए है क्योकि नौजवान किसी ऐसे ख्याल या राय को बर्दाश्त नही कर सकता जो उसकी राय के खिलाफ जाती हो। उनकी बातचीत मे कुछ गरमी बढ जाती है और कुछ देर बाद उस अधेड उम्र के आदमी को ऐसा लगता है कि वह नौजवान और कोई नही बल्कि खुद मै ही हूँ जैसा कि मै अठारह बरस की उम्र मे था।

अब प्रधान मत्रीजी, मान लीजिये कि आपकी मुलाकात खुद अपने-आपसे होती है, जैसे कि आप अठारह बरस की उम्र मे थे? आपका क्या ख्याल है,

आपको क्या-क्या शिकायतें सुनने को मिलेगी? और आप इस गुस्ताखि नौजवान को क्या जवाब देंगे?

नेहरू मैं समझता हूँ हम दोनो में बहुत दिलचस्प बहस होगी। मुमकिन है कुछ गरमागरमी भी हो जाये। लेकिन बहस बहुत दोस्ताना होगी और हम दोनो एक-दूसरे की बात को समझेंगे।.... .

मॉड दोनो उम्रो में रवादारी और बर्दाश्त?

नेहरू. हाँ, मेरा ख्याल तो यही है।.. कुछ तो इस वजह से कि मेरे लिए खुद अपने बारे में कोई राय कायम करना मुश्किल है। लेकिन मेरा ख्याल है कि कुछ इस वजह से भी कि मेरे अदर अभी तक कही-न-कही वह बीस-तीस बरस के नौजवानो वाली बात मौजूद है। इसमे तो शुबहा नही कि मैं बदल गया हूँ लेकिन नौजवानो से मेरा रिश्ता बिल्कुल ही टूट गया हो ऐसी बात नही है।

लेकिन एक बात मैं आपको बता दूँ: अपनी जिदगी मे मेरे ऊपर जो कुछ बीती है, जो मायूसियाँ मुझे हुई है, जो भरम टूटे है, उन सबके बावजूद कभी ऐसा नही हुआ कि मैं बहुत दिन के लिए हिम्मत हार के बैठ गया हूँ।

ऐसा कहने के लिए मेरे पास कोई वजह या दलील तो है नही लेकिन मुझमे मुस्तकबिल के बारे मे, भविष्य के बारे मे एक यकीन है, हिदुस्तान के भविष्य के बारे मे, दुनिया के भविष्य के बारे मे। यह यकीन क्यो है मुझमे, इसकी मेरे पास कोई दलील नही है और जब मैं इसकी वजह सोचने बैठता हूँ तो दुनिया भर के दूसरे विचार मेरे दिमाग मे आने लगते है। मैं समझता हूँ कि कुछ हद तक तो इस यकीन को कायम रहने मे इस बात से मदद मिलती है कि मेरी सेहत निस्बतन कुछ अच्छी है। मुझमे जिदगी मे हिम्मत से काम लेने और खुश रहने की एक उमग है, काम करने की और आमतौर पर कुछ-न-कुछ करते रहने की एक उमग है। और इससे मुझे बहुत सहारा मिलता है, मेरी हिम्मत कभी पस्त नही होती।

२

तिबौर मांड आज हम अपनी बातचीत एक ऐसे सवाल से शुरू करेंगे जो शायद पच्छिमी मुल्को के लोगो के दिमाग मे सबसे पहले उठता है उस सवाल से जिसे हम सीधे-सादे लफ्ज़ो मे पच्छिमी मुल्को की चौधराहट को चुनौती कह सकते है।

इस मसले का कुल निचोड यह है कि अब तक जो पच्छिमी मुल्क तमाम दुनिया पर छाये रहे है उनके कुछ मनसूबे और इरादे है और दूसरी तरफ बाकी दुनिया के रहनेवालो की भी कुछ मुनासिब मुरादें और उमगे है, इन दोनो के बीच समझौता कैसे कराया जाये। इस बात को भी हम थोडे से अलफाज मे इस तरह कह सकते है कि पिछली दो या तीन सदियो से पच्छिमी मुल्क बाकी तमाम दुनिया के मिजाज को और उनकी सरगर्मियो को अपने इशारो के मुताबिक चलाने के आदी हो चुके है। बीसवी सदी के शुरू से—बल्कि खास तौर पर पिछले बीस बरसो मे—उनकी इस चौधराहट को चुनौती दी गयी है। इसके नतीजे के तौर पर या तो पच्छिमी मुल्को ने अपने बचाव के लिए कुछ कदम उठाये है या फिर बाकायदा ऐसे तरीके, रास्ते या ज़रिये खोजे गये है जिनकी मदद से इस बदली हुई हालत के मुताबिक वह भी अपने तौर-तरीको को बदल सके।

प्रधान मत्रीजी, क्या आपका ख्याल यह है कि पच्छिमी मुल्को की चौधराहट को जो यह चुनौती दी गयी है उसका मकसद लाजिमी तौर पर यह है कि पच्छिमी मुल्को को हटाकर उनकी जगह कोई दूसरा अपनी चौधराहट जमा ले—जैसा कि मुख्तलिफ कौमो और मुल्को के आपस के आम टकरावो का मकसद होता है—या इस वक्त जो बडे-छोटे और कमजोर-ताकतवर का फर्क है उसे धीरे-धीरे मिटा देने से दुनिया मे एक नये किस्म का निज़ाम, एक नयी व्यवस्था

की जा सकती है, एक ऐसा नया निजाम जिसकी वजह से इतिहास का एक नया और ज्यादा तामीरी, ज्यादा रचनात्मक दौर शुरू हो सके।

जवाहरलाल नेहरू . मै तो यह कहता हूँ कि मौजूदा जमाने का मिजाज ही इसके खिलाफ है कि कोई किसी दूसरे को दबाकर रखे, चाहे किसी एक कौम के दूसरी कौम को दवाने का सवाल हो, या आर्थिक ढग से दवाने का सवाल हो, किसी तवके या वर्ग के किसी दूसरे वर्ग को दबाने का सवाल हो या किसी एक नस्ल के लोग किसी दूसरी नस्ल के लोगो को दबाते हो।

आपने अभी इस वात का जिक्र किया था कि योरपवाले दो या तीन सौ साल तक एशिया को दवाये रहे। अगर आप इतिहास के एक लम्बे अरसे पर नजर डाले तो आप देखेगे कि शायद यह दो-तीन सौ वरस एक लम्बी कहानी का वहुत छोटा-सा हिस्सा है, एक ऐसा हिस्सा जो अब खत्म हो रहा है। इसका खात्मा किस तरह होगा इसे तो कोई भी नही जानता। मै नही समझता कि जव तक एक-दूसरे को दवाने का यह सवाल खत्म नही होगा तव तक दुनिया मे कोई सतोपजनक शाति या सतुलन कायम हो सकता है।

इसके कई पहलू हैं। एक तो कौमी जज्वा होता है, राष्ट्रीयता की भावना होती है जिसकी वजह से लोग सियासी मामलो मे, राजनीति के सवालो मे इस बात की मुखाल्फत करते हैं कि कोई दूसरा मुल्क उन्हे दवाने की कोशिश करे। फिर आर्थिक सवालो मे दवाने की बात होती है, जिसकी भी लोग उतनी ही सख्त मुखाल्फत करते है। नस्ली भेद-भाव के, गोरे और काले में फर्क करने के तो लोग बहुत ही सख्त खिलाफ हैं। फिर आर्थिक सवालो पर अलग-अलग तबको का, अलग-अलग वर्गों का टकराव होता है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। वर्गों के बीच झगडे है, लेकिन सवाल यह पैदा होता है कि राजनीति के मैदान में, या आर्थिक सवालो पर, या गोरे-काले के फर्क के सवाल पर या किसी भी दूसरे सवाल पर, ये तब्दीलियाँ बिना लडाई-झगडे के शांति से [illegible] की जा सकती है या नही? जब, आमतौर पर, मिसाल [illegible] [illegible] के सिलसिले में कम्युनिज्म मे वर्गों के झगडे का [illegible] किया जाता है—और जैसा कि मै कह चुका हूँ वर्गों मे झगडे है। [illegible] [illegible] यह नही है कि इन झगडो को सिर्फ

मारपीट या जोर-जबर्दस्ती से ही हल किया जा सकता है, सिर्फ इस तरह हल किया जा सकता है कि एक तबका दूसरे तबके को दबा ले।

दरअसल हम ऐसी मजिल पर पहुँच गये है जहाँ किसी भी बडे पैमाने के दगे-फसाद या मारपीट का—चाहे वह सियासी सतह पर हो या आर्थिक सतह पर—नतीजा सिर्फ यही नही होता कि चारो तरफ एक अजीब गडबडी और उथल-पुथल मच जाती है बल्कि इसके बाद जो दुश्मनी पैदा होती है, दिलो मे जो जहर भर जाता है वह इससे पहले के लडाई-झगडे और मारपीट से भी बुरा होता है।

फिर भी सवाल यही है कि इन बड़े-बडे झगडो को मिटाना है।

इससे तो कोई इकार नही करता कि सभी इसान एक जैसे नही होते। उनमे फर्क होता है। उसी तरह इसानो के अलग-अलग गरोहो मे भी फर्क हो सकते है। कुछ .आप कह सकते है, ज्यादा तरक्कीयाफ्ता हो सकते हैं—साइस के मामले मे, तहजीब या सस्कृति के मामले मे, या किसी भी मामले मे—और दूसरे कम तरक्कीयाफ्ता हो सकते है। कोई आदमी बहुत अकलमद होता है और कोई बेवकूफ होता है। आप सबको बराबर तो नही कर सकते। लेकिन जो बात ज़रूरी है वह यह कि उन सबको आगे बढने का बराबर मौका मिलना चाहिये। अगर किसी कौम मे, या किसी गिरोह मे, या किसी आदमी मे तरक्की करने की ताकत है, अगर वह तरक्की कर सकता है, तो उसे इसका मौका मिलना चाहिये। अगर उसमे तरक्की करने की लियाकत ही नही होगी तो वह जहाँ का वहाँ बना रहेगा। मुमकिन है कि उसके लिए वही ठीक हो, शायद वह कुछ निचले दर्जे की जिदगी मे ही ज्यादा खुश रहे। अगर आप उसे अपने पैमाने से ऊपर चढाने की कोशिश करेगे तो उससे कोई फायदा नही होगा। लेकिन उसे इस बात का मौका तो दीजिये कि वह अपने-आपको ऊपर चढाने की कोशिश करे।

मैं नही समझता कि महज़ इसलिए कि झगडो का लगातार एक चक्कर चलता रहता है, इस वजह से योरपवालो की चौधराहट खत्म होकर किसी दूसरे की चौधराहट कायम हो जायेगी। इस जमाने मे—जो ऐटमी ताकत और ऐटम बम का जमाना है—झगडा करना इतना खतरनाक हो गया है कि उससे बहुत

बडे पैमाने पर तबाही आती है। इसलिए हमे कोई ऐसा रास्ता निकालना है जिससे इन झगडो को शाति के साथ तै किया जा सके और धीरे-धीरे ऐसा हो जाये कि सब लोगो को तरक्की करने का बराबर मौका मिले।

मॉंड : मै समझता हूँ कि यहॉ पर हमे इन दो बातो मे फर्क करना चाहिये कि एक तो कुछ जमाअते, कुछ सस्थाएँ दूसरो को दबाती है और फिर दूसरा दबाव वह होता है जो इसान की फितरत से पैदा होता है।

आखिर दुनिया मे इतिहास के कुछ बडे-बडे विद्वान् ऐसे है जो इस बात को मानते है कि महज ताकत के लिए ताकत हासिल करने की कोशिश मे इतिहास मे जितनी बडी-बडी बाते हुई है उतनी आर्थिक मुनाफे की वजह से भी नही हुई। अगर दुनिया मे एक ऐसा निजाम कायम हो जाये जिसमे आर्थिक तौर पर दूसरो को दबाने का यह लालच मिट जाये तो क्या इस बात की उम्मीद की जा सकती है कि ताकत हासिल करने की यह ख्वाहिश भी—जो एक ऐसी ख्वाहिश है जो इसान के मिजाज मे तकरीबन हमेशा से ही मौजूद रही है—मिट जायेगी ? और अगर हम इस उम्मीद की बिना पर यह मान भी ले कि इसान को तबाह करनेवाली इस ताकत की भूख को काबू मे किया जा सकता है तो आदमी की समाज मे दूसरो से बढकर रहने की जो एक कुदरती ख्वाहिश होती है उसे वह किन दूसरे तरीको से या किन बातो मे पूरा कर सकता है।

नेहरू: मै आपकी इस बात को मानता हूँ कि महज ताकत के लिए ताकत हासिल करने की ख्वाहिश बहुत अहमियत रखती है—अगर हर आदमी मे नही तो कम-से-कम कुछ लोगो मे तो यकीनन यह बात होती है।

मै इसके बारे मे सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि आगे चलकर मुमकिन है कि इसानी समाज की शक्ल कुछ ऐसी हो जाये कि महज ताकत के लिए ताकत हासिल करने की ख्वाहिश कम हो जाये, यानी अगर लोगो को अपनी मर्जी के मुताबिक तरक्की करने का मौका दिया जाये। लेकिन बहरहाल दूसरो को दबाकर रखने की इन ख्वाहिशो पर कुछ रोकथाम रखना अच्छा है। अगर आप आर्थिक तौर पर दूसरो को दबाने के इमकान कम कर दें, ताकत से लोगो को जो फायदे होते है, अगर आप उनकी कोई हद बाँध दे.

मॉड . मतलब यह कि अगर उस लालच को ही दूर कर दिया जाये

नेहरू बिल्कुल। अगर आप उस लालच को ही दूर कर दे तब भी इसमे तो शक नही कि यह बात कुछ-न-कुछ हद तक बाकी ज़रूर रह जायेगी, लेकिन उससे आप निबट सकते है। उससे हम बिल्कुल उसी तरह निबट सकते है जैसे हम किसी मुजरिम से निबटते है। और अगर आप मुझे इजाजत दे तो मैं तो यही कहूँगा कि किसी भी एक जगह पर चाहे वह बहुत ही अच्छे आदमी के हाथो मे ही क्यो न हो, बहुत ज्यादा ताकत का इकट्ठा हो जाना—वह सियासी ताकत हो या आर्थिक ताकत हो या और किसी किस्म की ताकत हो—बहुत ख़तरनाक बात होती है। इसलिए हम ऐसे राजा को नही चाहते जो मनमानी हुकूमत चलाता हो। हम नही चाहते कि ताकत किसी ऐसे आदमी के हाथ मे हो जो आर्थिक मामलो मे बादशाह बन बैठे। हम इजारेदारियाँ नही चाहते। दूसरे लफ्ज़ो मे, आम रुख़ यह होना चाहिये कि हर तरह की ताकत को ज्यादा-से-ज्यादा लोगो के हाथो में फैला दिया जाये ताकि आम जनता उसमे बराबरी का हिस्सा ले सके।

मॉड लेकिन साइस और मशीनो की तरक्की के एतबार से तो हम बिल्कुल ही उल्टी तरफ जा रहे है।

नेहरू यह बात सच है। यही तो आज का सबसे बडा मसला है। साइस और मशीनो की तरक्की हमे ज्यादा-से-ज्यादा ताकत एक ही जगह इकट्ठा कर देने की तरफ ले जाती है, हमे और भी बडी मशीनो की तरफ ले जाती है। लेकिन फिर भी अगर बिजली की ताकत भी हमारे हाथ में आ जाये तो हमे एक ऐसा हथियार मिल जाता है जिससे हम ताकत को बहुत बडे इलाके मे फैला सकते है। बडी मशीन को एक जगह के बजाय कई जगहो मे फैलाया जा सकता है। और ऐटमी ताकत हमारे हाथ मे आ जाने से तो इस सिलसिले को और आगे बढाया जा सकता है।

यह तो कोई भी नही बता सकता कि आख़िर मे चलकर इसान की फितरत क्या हो जायेगी। क्योकि आख़िर मे फ़ैसला तो इसान की बिना पर ही होता है। ख़ैर कुछ भी हो, बुराइयाँ जिस शक्ल मे हमारे सामने आयेगी हम

उनसे निबट सकते हैं और यह उम्मीद कर सकते है कि आगे चलकर ऐसी फिजा तैयार हो जायेगी कि जो आदमी महज ताकत की खातिर ताकत हासिल करना चाहता है उसके हौसले ठडे पडते जायेगे।

मॉड लेकिन, प्रधान मत्रीजी, क्या आपका ख्याल यह है कि समाजी ढाँचे मे ताकत को ज्यादा बडे इलाके मे फैला देने से जो बहुत-सी जजीरे टूटेगी उसके साथ ही लाजिमी तौर पर यह भी हो सकता है कि हुकूमत का कारोबार चलाने के लिए या ज्यादा सलीके से काम करने के लिए बडे-बडे इलाके, यहाँ तक कि पूरे-के-पूरे महाद्वीप, मिलकर एक हो जाये।. .

नेहरू मै इस बात पर यकीन रखने की कोई वजह तो नही समझता कि आगे चलकर ऐसा नही हो सकेगा। यह सही है कि इसमे बेशुमार मुश्किलो का सामना करना पडेगा। आखिर, आज का बुनियादी मसला क्या है? अगर हम उसे एक जुमले मे कहना चाहे तो यही कहेगे कि बहुत-सी ताकत एक जगह समेट लेने की ख्वाहिश अलग-अलग हर आदमी की आजादी के रास्ते मे रुकावट डालती है। लेकिन सवाल यह है कि अलग-अलग हर आदमी की आजादी भी जरूरी है और मशीनी तरक्की की वजह से बहुत-सी ताकत एक जगह समेट लेने की जरूरत भी पड़ती है, तो इन दोनो का पलडा बराबर कैसे रखा जाये. .

मॉड . . ताकत एक जगह समेट लेने की ही नही कभी-कभी इस बात की भी जरूरत पडती है कि सब लोग मिलकर काम करे, जिसे हम 'कलेक्टिवाइजेशन' या सामूहिक रूप से काम करना कहते है।

नेहरू : हाँ, 'कलेक्टिवाइजेशन' यानी काम करने के सामूहिक तरीके को ले लीजिये। कोआपरेटिव यानी सहकारी तरीके को ले लीजिये, मिसाल के तौर पर खेती-बारी मे या किसी दूसरे काम मे। यह बात तो जाहिर है कि कोआपरेटिव फार्म का मतलब जरूरी तौर पर यह नही होता कि ताकत एक जगह सिमट आयी है। वह फैली हुई होती है। फिर भी उसमे मिलकर काम होता है, सारा काम एक ही जगह से चलाया जाता है। इस तरह हम सियासी ताकत को—और दूसरे किस्म की ताकतो को भी—ज्यादा बडे इलाके मे, ज्यादा लोगो के हाथो मे फैला सकते है और साथ ही कोआपरेटिव

ढग से एक ही मरकज के नीचे रहकर साथ मिलकर काम करने का कोई रास्ता निकाल सकते है, हालॉकि ताकत किसी एक जगह पर जमा नही होने पायेगी।

माँड हम अब उस बुनियादी सवाल पर आ गये है जिसका ताल्लुक हमारे पहले मौजू से यानी इस सवाल से है कि लोगो मे उनकी जिंदगी की जरूरत की चीजो के एतबार से फौरन एक बराबरी पैदा करना वहुत जरूरी है। लालच यह होता है कि कोई मजबूत मरकजी ताकत, कोई केंद्रीय शक्ति यह बराबरी पैदा कर दे क्योकि वह ज्यादा तेजी से और ज्यादा अच्छे तरीके से यह काम कर सकती है और इस लालच से बचना तकरीबन नामुमकिन होता है। तारीख के मौजूदा दौर मे जबकि इसानो का बेशतर हिस्सा यह बराबरी पैदा करने के काम मे जी-जान से जुटा हुआ है, हमे भी ताकत को ज्यादा-से-ज्यादा लोगो के हाथो मे बॉटकर बहुत-से बधनो को तोड देने का रास्ता अपनाने के बजाय सामूहिक काम का रास्ता, एक मरकज से काम चलाने का रास्ता ज्यादा अच्छे तरीके से काम करने का रास्ता अपनाने का लालच होता है।

नेहरू यकीनन, यह उलझन तो होती है। इसके साथ ही वक्त का सवाल भी हमारे सामने होता है। हमारे सामने एक खास वक्त के अदर ही काम पूरा कर लेने का सवाल होता है। नही तो इस बात का खतरा रहता है कि तबाही लानेवाली, फूट डालनेवाली, इतशार पैदा करनेवाली ताकते और दूसरी ताकते आपकी सारी कोशिशो को मिट्टी मे मिला दे। इस सवाल का कोई नपा-तुला जवाब देना मुश्किल है, हम सिर्फ इतना ही कह सकते है कि तब्दीली का सिलसिला काफी तेज होना चाहिये।

यह जरूरी नही है कि तब्दीली का सिलसिला ऐसा हो जो हर चीज को तोड-फोड दे। लेकिन उसका काफी तेज होना जरूरी है ताकि उम्मीद बँधी रहे। मेरा अपना तजुर्वा यह है कि अगर एक बार लोगो को यह मालूम हो जाये कि आप किसी तरफ आगे वढ रहे है तो उनकी उम्मीद बँधी रहती है। वह देर को वर्दाश्त करने के लिए तैयार रहते है, ज्यादा देर नही लेकिन थोडी-सी देर को वे वर्दाश्त कर लेते है, क्योकि वे जानते है कि वह किसी चीज की तरफ आगे वढ रहे है। उन्हे गुस्सा उसी वक्त आता है जब वे देखते है कि वे किसी भी तरफ आगे नही जा रहे है।

मॉड . उनकी हालत कुछ-कुछ पहाड पर चढनेवालो की ऐसी होती है जो उस चोटी को देखते रहते है जिस पर उन्हे पहुँचना है और इससे उन्हे आगे वढते रहने की ताकत मिलती है।

नेहरू . जी हाँ, बिल्कुल यही बात है। . .

मॉड · बराबरी पैदा करने के इस पूरे सिलसिले की बुनियादी बात, जाहिर है, एशिया का इनकलाब है। प्रधान मत्रीजी, क्या आप इस बात को मानेंगे कि एशिया के इनकलाब का कुल निचोड इस बात मे है कि एक ऐसी पीढी मैदान मे उतर आयी है जो लोगो मे जिदगी की जरूरत की चीजो के मामले मे बराबरी पैदा करने के इस काम मे जुटी हुई है। जिदगी की जरूरत की चीजो मे बराबरी पैदा करने का एक ऐसा पहलू भी है जिसका ताल्लुक चीज़ो से नही बल्कि आदमी के जज्बात से, उसकी भावनाओ से है इसान को जिन बेइज्जतियो का और जिन मजबूरियो वगैरह का सामना करना पडता है उन्हे दूर करना। लेकिन फर्ज कर लीजिये कि आप इस बात को मान लेते हैं कि हम बराबरी पैदा करनेवालो की एक पूरी पीढी को मैदान मे उतरते देख रहे है—जो या तो बेसब्री से जल्दी-जल्दी बराबरी से आना चाहते है या सब्र के साथ धीरे-धीरे बराबरी लाना चाहते है, और उनके तरीके भी उनके अलग-अलग इन रवैयो के मुताबिक होते है—तो क्या आप समझते है कि वे लोग हमारे हजारो बरस पुराने तौर-तरीको पर, हमारी परम्पराओ पर, जो हमले कर रहे हैं उनका असर कुछ ही दिन तक रहेगा ? क्या यह हमला उसी वक्त तक रहेगा जव तक बरावरी लाने का काम होगा ? और क्या आखिर मे हजारो वरस पुराने हमारे तौर-तरीको और हमारी रवादारी की बुनियाद फिर कायम हो जायेगी ?

नेहरू इसका जवाव देना मुश्किल है। सचमुच विना कोई ठोस मिसाल लिये कोई ऐसा जवाव देना मुश्किल है जो इस पूरे सवाल पर लागू हो सके। अलग-अलग मुल्को की हालत अलग-अलग होती है और मै यह वताने की हिम्मत नही कर सकता कि किस मुल्क मे क्या होगा। अगर मै कुछ कह सकता हूँ तो बस हिंदुस्तान के वारे मे, और हिंदुस्तान के वारे मे भी मै वहुत साफ तौर पर कुछ नहीं कह सकता, सिर्फ कुछ मोटी-मोटी वाते ही कह सकता हूँ।

बहरहाल मैं हिंदुस्तान को थोडा-बहुत जानता हूँ और मै समझता हूँ कि हिंदुस्तान मे तब्दीलियो का यह सिलसिला शाति के साथ लगातार जारी रह सकता है बशर्ते उसकी रफ्तार बहुत धीमी न हो। मतलब यह कि हर वक्त एक टकराव होता रहता है। दो ताकते हरदम काम करती रहती है एक तो होती है चीजो को बदलने की उमग और दूसरी होती है चीजो को ज्यो-का-त्यो बना रहने देने की, चीजो को पुराने ढर्रे पर चलते रहने देने की ख्वाहिश। हर मुल्क मे ये दोनो ही ताकते हमेशा काम करती रहती है। बिल्कुल नये सिरे से कोई काम शुरू करने का मतलब यह होता है कि हम अपनी हजारो बरस पुरानी रवायतो से, परम्पराओ से, अपनी पुरानी सस्कृति से, हर चीज से नाता तोड ले। तो बुनियादी तौर पर तो कोई भी मुल्क ऐसा नही करता। इनकलाब के बाद भी उसे अपनी पुरानी चीज़ो का सहारा लेना पडता है। लेकिन अगर तब्दीली के सिलसिले को रोक दिया जाये और चीजो को ज्यो-का-त्यो पुराने ढर्रे पर चलाते रहने पर बहुत ज्यादा जोर दिया जाये तो फिर लोग पुरानी चीजो से, पुराने तौर-तरीको से बिल्कुल नाता तोड लेना चाहते है। इसलिए सवाल यह है कि इन दोनो ताकतो के पलड़े बराबर कैसे रखे जाये।

सॉड मैं इसी सिलसिले मे आपसे एक सवाल पूछना चाहूँगा, पिछले कई बरसो से हिंदुस्तान मे जो कुछ हुआ है उसे गौर से देखते हुए यह सवाल मेरे दिमाग मे बार-बार उठता रहा है। वह सवाल यह है कि क्या जम्हूरी तरीको से हिदुस्तान जैसे मुल्क मे वह हालात पैदा किये जा सकते है जिनका पहले होना जम्हूरियत कायम करने के लिए जरूरी है।

मैं इस बात को तो बिल्कुल मानता हूँ कि जब तक थोडी-बहुत भी तरक्की होती रहेगी, जब तक आम हिदुस्तानी को यह ख्याल रहेगा कि वह किसी चीज़ की तरफ बढ रहा है तब तक वह बडे सब्र और बर्दाश्त के साथ इतजार करेगा और इन कोशिशो को जारी रहने देगा। लेकिन अगर किसी समाज के ढाँचे मे, मिसाल के तौर पर हिदुस्तानी समाज के ढाँचे मे ही कुछ खराबियाँ हो—जिस तरह कि आर्थिक एतबार से उपनिवेशवाद इसी तरह की एक खराबी थी—तो क्या इन खराबियो को दूर करने का सिर्फ एक यही तरीका नही है कि कोई दूसरी ताकत जबर्दस्ती दखल देकर उस खराबी को दूर कर दे, जिस तरह

जिस्म के किसी हिस्से मे खराबी पैदा हो जाने पर उसे काटकर उस खराबी को दूर किया जाता है?

हमारे लिए लाजिमी है कि हम कुछ गोलमोल और बहुत सख्त लफ्जो का इस्तेमाल करे जैसे एक तरफ तो इनकलाब, गोली से उडा देनेवाले दस्ते और कमिस्सार और दूसरी तरफ ठेठ अग्रेजी ढग की पार्लमेटरी डेमाक्रेसी यानी ससदीय लोकतत्र। लेकिन मै समझता हूँ कि इन दोनो के बीच की भी कोई चीज हो सकती है, जिसमे शायद आधा हिस्सा एक का और आधा दूसरे का हो। कोई ऐसा तरीका भी हो सकता है जिससे हम ज्यादा मजबूती से कदम उठा सकते है लेकिन जिसके लिए यह जरूरी नही है कि हम एक-एक मजिल तै करते हुए तरक्की करने के अपने आदर्श को छोड दे।

थोडे से लफ्ज़ो मे मेरा सवाल यह है कि क्या जम्हूरी तरीको से वे हालात पैदा किये जा सकते है जिनका पहले होना जम्हूरियत कायम करने के लिए ज़रूरी है?

नेहरू · मेरे ख्याल मे तो किये जा सकते है। यह मुमकिन है और यह किया जा सकता है, लेकिन जाहिर है इसके लिए कई शर्ते है।

सबसे पहले तो जव आप जम्हूरियत या लोकतत्र का जिक्र करते है तो उससे आपकी क्या मुराद है? पिछले सौ-डेढ सौ बरस की जम्हूरियत को ले लीजिये। पच्छिमी योरप के कुछ मुल्को मे जम्हूरियत थी लेकिन वह बहुत ही महदूद थी, वहुत ही जकडी हुई थी। बहुत कम लोगो को वोट देने का हक था। वह सौ मे से समझ लीजिये दस या बीस या पच्चीस आदमियो की जम्हूरियत थी। जो सबसे ज्यादा जम्हूरी मुल्क है उनमे भी सबको वोट देने का हक अभी हाल ही मे मिला है। और योरप के बहुत-से मुल्क ऐसे है जहाँ अभी तक औरतो को वोट देने का हक नही है। एक वार जहाँ सब लोगो को वोट देने का हक मिल जाये तो जम्हूरियत का कारोबार ज्यादातर लोगो की मर्ज़ी के मुताविक चलने लगता है। हम इस बात को मानकर चलते है—अगर उन्हे गुमराह कर दिया जाये या गलत रास्ते पर ले जाया जाये तो बात अलग है।

दूसरे, जम्हूरियत मे तब्दीली की रफ्तार कुछ धीमी जरूर होती है, उसमे तब्दीलियो का सिलसिला उन हुकूमतो के मुकावले धीमा होता है जहाँ एक

आदमी मनमानी हुकूमत चलाता है या जहाँ डडे के जोर से हुकूमत चलायी जाती है। यह बात तो सच है। लेकिन किसी भी कौम की ज़िदगी मे कोई बुनियादी तब्दीली करने मे वक्त तो लगता है। सोवियत यूनियन मे जो तब्दी-लियाँ हुई है उन्हे ले लीजिये। वहाँ भी आखिर वहाँ इनकलाब हुए अडतीस बरस हो चुके है और वहाँ लोगो को बडी मेहनत से काम करना पडा और वहाँ की हुकूमत जो कह देती थी उसके आगे कोई चूँ भी नही कर सकता था। वे जो चाहते थे कर सकते थे—इसकी भी हदे थी—फिर भी उन्हे बडी मेहनत से काम करना पडा। ये तब्दीलियाँ एकदम से तो आ नही गयी। इसमे तो शक नही कि इनकलाब एकदम से हुआ था, लेकिन पहले कुछ भी हो चुका हो, जब किसी चीज को बनाने का सवाल आता है तो उसमे वक्त लगता है।

मै इस बात को बिल्कुल मानने को तैयार हूँ कि डडे के जोर पर काम करने वाली हुकूमत कुछ कम वक्त मे उसी काम को कर सकती है। लेकिन मै नही समझता कि वक्त मे उतना ज्यादा फर्क होता है जितना कि लोग समझते है। कम-से-कम होना नही चाहिये, बशर्ते कि उस जम्हूरी मुल्क के लोग तब्दीली चाहते हो और उसके लिए काम करने को तैयार हो।

माड लेकिन क्या इसका यह पहलू ऐसा नही है जिसका ताल्लुक इस बात से है कि आदमी के दिमाग पर, उसके सोचने के ढग पर क्या असर पडता है? अगर आप मुझे हिंदुस्तान की मिसाल देने की इजाजत दे तो मै कहूँगा कि खासतौर पर हिंदुस्तान जैसे मुल्क मे, जहाँ के पिछले इतिहास मे बहुत-सी ऐसी बाते हुई है जिनकी वजह से लोगो मे एक काहिली, एक ढीलापन आ गया है, तो ऐसे मुल्क मे अगर कोई तब्दीली तेजी से हो तो उससे लोगो के दिमागो मे भी कुछ फुर्ती आयेगी।

मिसाल के तौर पर अगर आप रोज एक इच आगे बढे तो किसान शायद उस तब्दीली को देखेगा भी नही और खैर उसमे जोश तो बिल्कुल ही नही पैदा होगा। लेकिन अगर आप हर सोमवार को सवेरे उठकर सात इच आगे बढ जाये तो वह आदमी समझेगा कि कुछ हो रहा है और मुमकिन है कि इससे उसमे इतना काफी जोश पैदा हो कि वह अपने पुराने ढर्रे को छोड दे।

नेहरू . हाँ, यह तो ठीक है, रोज एक इच बढना ही काफी नही है। इसलिए हमे यह मालूम करना पडेगा कि हम कितनी तरक्की करे कि उस आदमी मे जोश पैदा हो, उसे अपने-आप पर भरोसा हो और उसमे और आगे बढने के लिए काम करने की उमग पैदा हो। वह तरक़्की कितनी हो?—जितनी ज्यादा हो उतना ही अच्छा है।

या यों समझ लीजिये कि बुनियादी वात यह है कि लोगो का रवैया एक खास ढग का बना दिया जाये। मुझे यकीन है कि यह किया जा सकता है।

हिदुस्तान को ले लीजिये। मै समझता हूँ कि यहाँ लोगो के सोचने का तरीका बहुत बदल गया है। मै सब लोगो की बाते नही कर रहा। इस वक्त हिदुस्तान मे मै अपनी सामुदायिक योजनाओ को, कम्युनिटी प्रोजेक्टो को, वडे-वडे कारखाने बनाने और नदियों पर वॉध बॉधकर बिजली पैदा करने की योजनाओ से भी ज्यादा जरूरी समझता हूँ हालॉकि ये वादवाली योजनाएँ वहुत वडी है और उनका बहुत रोब पडता है।

एक तब्दीली हुई है और हमारे लोगो मे नया जोश पैदा हुआ है, उनमे नयी जान आ गयी है। मै तो कहूँगा कि यह सिलसिला हमारे सियासी इनकलाब से, गाधीजी के आदोलन से शुरू हुआ। इसने इन लोगो को झँझोडकर जगा दिया। इससे उनमे आगे बढने की उमग पैदा हुई और उन्हे कुछ इस वात का भी अदाजा हुआ कि वे साथ मिलकर काम करने से, एक-दूसरे का हाथ बँटाकर कैसे अपनी मजिल तक पहुँच सकते है। अब सवाल यह है कि इस बात का फायदा उठाकर और साथ मिलकर काम करने के तरीको से उनकी हालत को और सुधारकर उनके जोश को हम कैसे बढाये? हम उनमे किस हद तक यह यकीन पैदा कर सकते है कि जो कुछ हो रहा है उसे उनकी तरफ से सरकार नही कर रही है—सरकार तो खैर करती ही है—बल्कि लोग खुद उसमे हिस्सा लेते है और वे एक ऐसे वहुत वडे कारोवार मे साझेदार है जिससे उनकी हालत वेहतर होगी, उनकी जिदगी की सतह ऊँची होगी? मै तो समझता हूँ कि यह किया जा सकता है।

दूसरी तरफ, मुमकिन है कि वहुत वडी इनकलावी तब्दीली से हमे यह फायदा होता है कि हमे एक तरह से नये सिरे से काम करने के लिए मैदान साफ

मिल जाता है लेकिन उस इनकलाब से तबाही भी बहुत होती है और अदर-ही-अदर बहुत-से झगडे भी पैदा हो जाते है।

मॉंड जाती तौर पर मै खुद बहुत ज्यादा इसके हक मे नही हूँ कि जरा-सी बात पर लोगो का सर उडा दिया जाये, लेकिन मेरा ख्याल यह जरूर है कि कुछ खास हालतो मे अगर कुछ जोर-जबर्दस्ती से और कुछ समझा-बुझाकर दोनो तरीको से काम लिया जाये तो बहुत कामयाबी हो सकती है।

इतिहास की ज्यादातर बातो की तरह यह बात भी आदमी-आदमी पर मुनहसर होती है। अगर जम्हूरी डिक्टेटर जैसी कोई चीज हो सकती है—मै जानता हूँ कि ऐसा आदमी मिलना बहुत मुश्किल है—तो आप ऐसे आदमी हो सकते है। इसलिए जब हिंदुस्तान जैसे मुल्क मे एक ऐसा आदमी है जिसे लोग इतना मानते है और जो यह सोच सकता है कि क्या-क्या काम करने है, तो फिर वह क्यो—मै यह सवाल उन लाखो लोगो की तरफ से कर रहा हूँ जो भारत की अदरूनी तरक्की को बडे गौर से देख रहे है—तो फिर वह इस वजह से अपने हाथ-पाँव बहुत बडी हद तक क्यो बाँध ले कि हुकूमत के काम का एक ख़ास ढर्रा होता है जिससे कभी नही हटना चाहिये, या कोई काम करने से पहले उसके लिए कानून बना लेना चाहिये चाहे यह बात बिल्कुल रस्मी ही क्यो न हो, जबकि ये सब बाते बुनियादी तौर पर बिल्कुल ही दूसरे समाजी ढाँचे से हमे मिली है।

नेहरू . इस सवाल का जवाब यह है कि उसे अपने हाथ-पाँव बाँधना नहीं चाहिये। दफ्तरी कार्रवाई के चक्कर को बुनियादी तौर पर इस तरह बदल देना चाहिये कि हम जिस तरह का नया समाज बनाना चाहते है उससे वह मेल खा सके।

मॉंड लेकिन वक्त गुज़रता जाता है और आदमी की जिदगी की एक हद मुकर्रर होती है

नेहरू मै इस बात को मानता हूँ। कोई डिक्टेटर कितना ही काबिल क्यो न हो, लोग उसे कितना ही मानते क्यो न हो लेकिन उसे अपना काम चलाने के लिए किसी-न-किसी तरह के सगठन की ज़रूरत तो होती है, उसे एक ऐसी मशीन की ज़रूरत होती है जिसके ज़रिये वह काम करे।

कम्युनिस्ट पार्टी कम्युनिस्ट डिक्टेटर की मशीन होती है। दूसरे मुल्को को दूसरी तरह की मशीनो की जरूरत होती है, हुकूमत की मशीन, पार्टी की मशीन या जो भी तरह-तरह की मशीने होती है। कम्युनिस्ट मुल्को को यह आसानी रहती है कि हुकूमत और कम्युनिस्ट पार्टी एक साथ जुडी होती है, दोनो साथ आगे बढती है। इसमे शक नही कि यह बहुत बडी सहूलियत है लेकिन मै समझता हूँ कि कम्युनिस्ट डिक्टेटरशिप मे भी एक हद होती है जिससे आगे ज्यादातर लोगो की मर्जी के खिलाफ नही जाया जा सकता। अगर वे आगे जाते है तो मुसीबत मे फँस जाते है और उन्हे पीछे हटना पडता है। दरअसल सवाल पलडा बराबर रखने का होता है, इस बात की कोशिश करने का कि जहाँ तक मुमकिन हो, हम आगे जाये और इस बात की कोशिश करे कि अपनी हुकूमत की मशीन को बदले और इस काम को दो तरीको से करना होता है · एक तो उस पूरी मशीन मे हर आदमी को तालीम देकर और दूसरे जहाँ जरूरत हो वहाँ नये आदमी को रखकर।

लेकिन इन सब बातो का साथ होना जरूरी है और इसलिए इस सवाल का कोई बँधा-बँधाया उसूली जवाब नही दिया जा सकता। वजह यह है कि आपको बहुत-सी चीज़ो के बीच एक तवाजुन, एक सतुलन कायम रखना पडता है। यह कतई मुमकिन है कि आज हम किसी मसले का कोई हल सोचे और आगे चलकर पता चले कि उससे भी अच्छा कोई हल हो सकता था। आदमी या तो बहुत फूंक-फूँककर कदम रखता है या वह जरूरत से ज्यादा आगे बढ़ जाता है।

सॉड अगर मै उन लोगो मे से होता जो हर बात मे ऐब निकालते है तो मै कहता कि इस बात को हिंदुस्तान मे एक बार पहले भी आजमाया जा चुका है। आपके मुल्क मे पुराने जमाने मे एक बहुत ही शानदार हस्ती गुज़री है, महात्मा बुद्ध की। उन्होने भी लोगो को समझा-बुझाकर हिंदू समाज के ढॉचे को बदलने की कोशिश की थी। दरअसल इसमे उन्हे हैरतअगेज हद तक कामयाबी मिली। दो सौ बरस से भी कम मे उन्होने हिंदुस्तान के लोगो के ख़्यालात बदल दिये। लेकिन आज हम क्या नतीजा देखते है? आज इस मुल्क मे दो लाख बौद्ध और ३० करोड हिंदू है। यह तो मै समझता हूँ कि सभी मिसालो

की तरह यह मिसाल भी पूरी तरह सही नही है। लेकिन मेरे दिल मे अब भी यह बात उठती है कि जब कोई समाज एक खास हद तक जकड जाता है और उसमे तरक्की करने की ताकत नही रह जाती तो क्या यह ज्यादा मुनासिब नही होता कि उसकी इस खराबी को दूर करने के लिए "खराब हिस्सो को काट देने का तरीका" इस्तेमाल किया जाये, अलबत्ता इस बात का ख्याल रखा जाये कि इसमे कोई ज्यादती न की जाये ?

नेहरू हॉ, तो आपने बौद्ध धर्म की मिसाल दी है।

यह सच है कि आज हिदुस्तान मे बौद्धो की तादाद बहुत थोडी है। लेकिन महात्मा बुद्ध ने और बौद्ध धर्म ने हिदू धर्म को बुनियादी तौर पर बदल दिया। उनका हिदू धर्म पर बहुत गहरा असर पडा। इस बात को भी याद रखिये कि बौद्ध धर्म मे जो खराबियाँ पैदा हो गयी थी उनकी वजह से ही उसकी ताकत खत्म हुई, उसके ख्यालो मे वह पाकीजगी नही रह गयी और उसके माननेवाले तरह-तरह की बातो पर और तरह-तरह के रीति-रिवाजो पर यकीन रखने लगे। और यही उसके कमज़ोर होने की वजह थी। लेकिन कुल मिलाकर हिदुस्तान पर उसका बहुत गहरा असर पडा। आप उसे चाहे बौद्ध धर्म कह ले या हिदू धर्म, इसमे शक नही कि उसका असर सिर्फ दार्शनिक सतह पर था और समाजी सतह पर तो बहुत थोडी ही हद तक था।

"जिस हिस्से मे खराबी हो उसे काट देना" यकीनन जरूरी होता है और दरअसल यह काम लोकतान्त्रिक ढग से राजनीतिक और आर्थिक दोनो ही सतहो पर किया भी जाता है।

हम देसी रजवाडो को खत्म कर सकते है, यह "जिस हिस्से मे खराबी हो उसे काटकर अलग कर देने" का तरीका है। हमने जमीदारी को खत्म किया, यह भी बहुत बडा काम है। यह सच है कि जो बाते और जो रीति-रिवाज लोगो के दिमागो मे बैठ चुके हो उनसे निबटना इससे भी ज्यादा मुश्किल होता है। हम छूतछात के खिलाफ एक कानून पास करते है। इसमे तो शक नही कि इस कानून का बहुत असर हुआ, बहुत बडी हद तक इसलिए कि उससे पहले छूतछात के खिलाफ बहुत बडा आदोलन चल चुका था। लेकिन फिर भी यह सवाल बाकी रहता है कि हिदुस्तान मे बहुत-से लोग ऐसे है जो अब भी

पुराने ढग से सोचते और काम करते है, इस बात को किसी कानून की मदद से खत्म नही किया जा सकता। लेकिन आजकल के हालात इन बातो के खिलाफ पडते है। आप रेल मे या कारखाने मे तो छूतछात नही कर सकते, या नये तर्ज की जिदगी मे, शहरो मे छूतछात का कोई सवाल नही है। गाँवो मे छूत-छात जरूर है लेकिन उसे खत्म किया जा रहा है।

इस तरह हर समाजी ताकत पर दो तरह के असर पडते है। एक तो प्रचार का, समझाने-बुझाने वगैरह का, और दूसरा जिदगी के बदलते हुए हालात का। सवाल यह नही है कि जिस "हिस्से मे खराबी हो उसे काट दिया" जाये कि नही, बल्कि सवाल यह है कि इसके लिए कौन-सा तरीका अपनाया जाये। लोकतान्त्रिक विधानसभा मे बहुमत कोई कानून पास करके—कोई बहुत बडी तरक्की का कानून पास करके—यही काम करता है। मै समझता हूँ कि आपका मतलब शायद यह है कि पक्का इरादा रखनेवाले अल्पमत को, थोडे से लोगो को, निकम्मे बहुमत की मर्जी के खिलाफ भी "खराब हिस्से को काटकर अलग कर देना" चाहिये कि नही ?

मॉड : जी हाँ, पक्का इरादा रखनेवाले अल्पमत को या कुछ ऐसी बडी-बडी हस्तियो को जो खुशकिस्मती से, इतिहास के किसी सयोग से, यह काम कर सकती हो।

नेहरू ठीक है। अगर ऐसी कोई हस्ती हो तो फिर तो यह मानी हुई बात है कि वह ज्यादातर लोगो को हिला सकती है और उनसे काम ले सकती है।

मॉड यह तो आप लफ्जो से खेल रहे है। "हिलाने" का मतलब या तो यह हो सकता है कि बहुत धीरे-धीरे लोगो को समझा-बुझाकर राजी किया जाये या फिर उसका मतलब यह हो सकता है कि अपने असर का फायदा उठाने का ज्यादा सीधा तरीका इस्तेमाल किया जाये।

नेहरू लोगो को हिलाने से मेरा मतलब है कानून के लोकतान्त्रिक तरीको से, जम्हूरी तरीको से उन्हे आगे बढाना। जिस हस्ती का आप जिक्र करते है, वह इन कानूनो को लोकतान्त्रिक तरीको से बनवा सकती है। हमने अभी हाल ही मे एक-दो कानून पास किये है और मिसाल के तौर पर हम इस वक्त हिदुओ

मे व्याह और तलाक के वारे में एक कानून पर सोच-विचार कर रहे है। हिंदुओं की जिंदगी में यह एक वहुत वुनियादी चीज़ है। हमने पार्लियामेंट में एक कानून पास किया है जिसके मुताविक किसी हिंदू के लिए दो शादियाँ करना जुर्म है। यह वहुत वडी वुनियादी तव्दीली है। इसके वाद हम विरासत के वारे मे, उत्तराधिकार के वारे मे जो कानून हैं उसे वदलने वाले है। ये कानून हिंदुओं के ज़ाती कानून है जो उनके रीति-रिवाजो मे, उनकी आदतो मे और उनके मज़हव मे शामिल हो चुके हैं।

लेकिन हम मुसलमानो के मामले मे दखल देने की हिम्मत नही करते क्योकि उनकी तादाद थोड़ी है और हम नही चाहते कि हिंदू, जिनकी तादाद ज्यादा है उनके मामलो मे दखल दे। ये जाती कानून हैं और इसलिए जव तक मुसलमान खुद उन्हे वदलना न चाहे तव तक इन कानूनो को नही छेडा जायेगा। हिंदुस्तान के मुकावले मे तुर्की के लिए यह करना ज्यादा आसान है क्योकि तुर्की एक मुसलमान मुल्क है। हम यह नही चाहते कि किसी को यह ख्याल हो कि हम मुसलमानो के ज़ाती कानूनो के सिलसिले मे कोई वात ज़वर्दस्ती करना चाहते हैं।

मेरा कहने का मतलव यह है कि कोई भी डिक्टेटर जिसे लोग मानते हो, अगर लोग उसके साथ हो तो वह जम्हूरी तरीको से कानून पास करवा सकता है, किसी खास कानून के वारे मे मुमकिन है लोगो मे उतना जोश न हो। लेकिन अगर उसके माननेवाले काफी है तो लोग कहेगे अच्छी वात है अगर वह कहता है तो इसमे भलाई की ही वात होगी। लेकिन मेरा मतलव यह है कि तरीका जम्हूरी ही रहता है।

सॉंड · माफ कीजियेगा, मेरा ख्याल है कि हम अपनी वातचीत मे एशिया के ज्यादा वडे मैदान से हटते-हटते वहुत अलग आ गये है। अगर आप मंजूर करे तो अपनी पिछली वातचीत की तरह ही हम पूरी तरह हिंदुस्तानी मसलो पर ही वात करेंगे, अव मैं फिर आमतौर पर पूरे एशिया की वात करना चाहूँगा। जिस इलाके को हम गैर-कम्युनिस्ट एशिया कह सकते है वह अव पिछले दस वरसो से आज़ाद है। मैं खासतौर पर दक्षिण-पूर्वी एशिया का ज़िक्र कर रहा हूँ। क्या आपके ख्याल मे इन मुल्को के इन दस वरसो के तजुर्वे से कुछ आम नतीजे निकाले जा सकते हैं? मिसाल के तौर पर इन मुल्को में

लोकतान्त्रिक तरीको के इस्तेमाल से जो नतीजे निकले है उनसे ? इन मुल्को मे उत्तरी अटलांटिक ढग की विधानसभाओ की मशीन किस हद तक कारगर हुई है या उसे हर जगह के अलग-अलग हालात के मुताबिक बनाने के लिए उसमे किस तरह के सुधार किये गये है ?

नेहरू . मै नही समझता कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के सब मुल्को के बारे मे कोई आम उसूल बना देना आसान है। वे सब एक-दूसरे से अलग है। पृष्ठभूमि मे और बहुत-सी दूसरी बातो मे वे एक-दूसरे से अलग है। मौजूदा दौर राष्ट्र-वाद का दौर है जो उनके आजादी के सफर की एक खास मजिल पर पहुँचकर आया। मै समझता हूँ कि अभी तक राष्ट्रवाद दक्षिण-पूर्वी एशिया की सबसे मजबूत ताकत है। लेकिन यह राष्ट्रवाद खालिस मध्यम वर्ग का राष्ट्रवाद नही है बल्कि उसमे एक खास समाजी रग है।

इस समाजी रग की जो पहली बात है उसका ताल्लुक जमीन के सवाल से है, किसानो के सवाल से है क्योकि इन मुल्को मे से ज्यादातर मुल्क सनअतो के मामले मे, उद्योग-धधो के मामले मे बहुत पिछडे हुए है और उनके सामने सबसे बडा सवाल जमीन का सवाल है, खेती-बारी का सवाल है।

दूसरी बात यह है कि वे अपनी जिदगी को बेहतर बनाना चाहते है, अपनी खाने, कपडे और घर की बुनियादी जरूरतो को पूरा करना चाहते है। मोटे-मोटे तौर पर योरप के बारे मे हम कह सकते है कि वहाँ लोगो की ये बुनियादी जरूरते पूरी हो चुकी है। इसलिए उन मुल्को को दूसरी जरूरतो के बारे मे सोचना पडता है और उनके सिलसिले मे दूसरे झगडे उठ खडे होते है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन मुल्को मे दो चीजो का मेल है, एक तो है राष्ट्रवाद और दूसरी है समाजवाद या समाजी तरक्की—मैं इस लफ़्ज को बहुत फैले हुए मानो मे इस्तेमाल कर रहा हूँ।

आप देखेगे कि जहाँ भी आजादी के बाद, समझ लीजिये, कम्युनिस्ट वगा-वत हुई है वहाँ उसे उस मुल्क के राष्ट्रवाद का सामना करना पडा है। आमतौर पर उसे उस राष्ट्रवाद के सामने हार माननी पडी है। बर्मा मे बहुत जबर्दस्त कम्युनिस्ट बगावत हुई थी, लेकिन बर्मा के राष्ट्रवाद ने—जो बहुत ही ज्यादा वामपक्षीय राष्ट्रवाद है, जो दरअसल समाजवादी राष्ट्रवाद है—

उसका मुकाबला किया और उसे हरा दिया। इंडो-चाइना मे राष्ट्रवाद और कम्युनिज्म साथ-साथ चले क्योकि वहाँ राष्ट्रवाद सिर्फ अपने बल-बूते पर नही कामयाब हो सकता था और इसलिए कम्युनिज्म को इस जबर्दस्त राष्ट्रवादी लहर से बहुत ताकत मिली। हिंदुस्तान मे भी राष्ट्रवाद को कामयाबी मिली, उस राष्ट्रवाद को जो समाजी रंग लिये हुए था। और कामयाब होने के फौरन बाद उसने समाजी सवालो की तरफ ध्यान देना शुरू किया। और इस तरह वह समाजी मामलो मे बकौल आपके किसी भी "चीरफाड के किस्म की" चुनौती का मुकाबला ज्यादा अच्छी तरह कर सकता था, क्योकि हम समाजी तरक्की कर रहे थे। मुमकिन है कि हम यह तरक्की उतनी तेजी से न कर रहे हो जितना कि हम चाहते है लेकिन बहरहाल हम तरक्की कर रहे है और इस बात की उम्मीद है कि हम और भी तेजी से तरक्की करेगे।

कॉड अगर आर्थिक तरक्की की चाल इतनी कम हो जाये कि आम लोगो की उम्मीद भी बँधी न रह सके तो क्या आपके ख्याल मे इस बात का खतरा पैदा हो जायेगा कि लोगो को कोई दूसरा रास्ता अपनाने का लालच हो ?

नेहरू यकीनन। लोगो मे समाजी तरक्की की जितनी माँग और उमग है, समाजी तरक्की की जितनी बुनियादी माँग है, अगर समाजी तरक्की की रफ्तार उससे धीमी होगी तो कोई दूसरी चीज आकर उस माँग को पूरा करने की कोशिश करेगी।

कॉड क्या इससे मै यह समझूं कि जैसे ही मुल्क की समाजी या आर्थिक तरक्की की रफ्तार कम होते-होते इस "उम्मीद की सतह" से नीचे पहुँच जायेगी वैसे ही कम्युनिस्टो का छोटा रास्ता अपनाने का लालच हिंदुस्तान के सामने ठोस शक्ल मे पैदा हो जायेगा ?

नेहरू · उसूल मे तो यह बात ठीक है ? लेकिन कम्युनिस्टो के छोटे रास्ते से आपका क्या मतलब है ?

कॉड लोगो की बेचैनी बढते-बढते इस हद पर पहुँच जाये कि लोगो की कोई इनकलाबी तरीका अख्तियार करने की ख्वाहिश ।

नेहरू ठीक है, मै समझा लेकिन हमे इन बातो पर गौर करते वक्त यह ध्यान मे रखना चाहिये कि उस मुल्क की पृष्ठभूमि क्या रही है। मान

लीजिये यहाँ जो तरक्की हुई है उससे यहाँ के किसान संतुष्ट हैं—सोलहो आने न सही, लेकिन फिर भी सतुष्ट हैं—तो कम्युनिस्ट जो फर्ज कर लीजिये मजदूरो के बीच काम करते है, हिंदुस्तान की ज्यादातर आबादी पर असर नही डाल सकेंगे। उनका सवाल बहुत बाद मे जाकर पैदा होगा जब मुल्क मे बहुत ज्यादा औद्योगिक तरक्की हो चुकी होगी। उस वक्त तक बहुत-सी दूसरी तब्दीलियाँ भी हो चुकी होगी। यह तो कोई भी नही बता सकता कि क्या तब्दीलियाँ हो चुकी होगी। बहुत मुमकिन है कि कम्युनिज्म मे, बल्कि कहना चाहिये कम्युनिस्टो के काम करने के तरीके मे बहुत-सी तब्दीलियाँ हो जायेगी।

मॉड उसमे तो इस वक्त भी तब्दीलियाँ हो रही है।

नेहरू हाँ, तब्दीलियाँ तो हुई है और इस सवाल पर बिल्कुल ईमानदारी से नजर डालने पर मैं तो समझता हूँ कि हिंदुस्तान के किसी कम्युनिस्ट के लिए रूस या चीन मे जो कुछ हुआ है उसकी नकल करना बिल्कुल बेतुकी बात है। वह कम्युनिस्ट आदर्श को जरूर अपने सामने रखे। जहाँ तक हमारा सवाल है, मेरा मतलब हिंदुस्तान के ज्यादातर लोगो से है, हम समाज के एक आदर्श की हैसियत से कम्युनिज्म के खिलाफ नही है, न समाजवाद के खिलाफ है, आदर्श की हैसियत से वे सब एक है। लोग जिस बात को पसद नही करते वह है कम्युनिस्टो का काम करने का तरीका। इसलिए यह तो बिल्कुल मुमकिन है, कम्युनिज्म या सोशलिज्म राष्ट्रीय आदोलन पर लगातार असर डाले और उसे गाफिल न होने दे और दूसरी तरफ राष्ट्रीय आदोलन भी उनकी तेजी को कुछ कम करता रहे।

मॉड. दोनो एक-दूसरे पर इस तरह असर डाले कि दोनो को बढ़ावा मिलता रहे।

नेहरू. हाँ,

मॉड अच्छा, चूंकि हम आमतौर पर दक्षिण-पूर्वी एशिया के बारे मे बाते कर रहे है, इसलिए क्यो न हम कुछ देर के लिए इधर हाल की घटनाओ पर रुककर बादुग के बारे मे कुछ बाते कर ले।

क्या हम अपनी पिछली परिभाषाओ को इस्तेमाल करके बादुग को एशिया मे तरक्की लानेवालो की मीटिंग कह सकते है, या अगर हम ज्यादा

सही-सही कहना चाहे तो क्या यह सब्र के साथ और बेसब्री से दोनो ही तरह के बराबरी लानेवालो की मीटिंग थी; जो शायद इसलिए मिल रहे थे कि यह मालूम करे कि उनके काम करने के अलग-अलग तरीको मे कौनसी चीजे ऐसी है जो एक-दूसरे से मिलती है और फिर इन मिलती-जुलती बातो से एक ऐसी बुनियाद तैयार करे जिसे सब लोग मजूर करे और फिर इस तरह के समझौते से अपने हाथ मजबूत करके औरो को उनकी आवाज़ सुनने पर मजबूर करे।

नेहरू हाँ, इसमे तो शक नही कि बादुग मे जिन मुल्को ने हिस्सा लिया था वे अलग-अलग किस्म के मुल्क थे। यो समझ लीजिये, उसमे पच्चिमी एशिया के मुल्क थे, अरब मुल्क थे, अफ्रीका के मुल्क थे, उसमे चीन था जो कम्युनिस्ट मुल्क है, कुछ अफ्रीकी और कुछ दक्षिण-पूर्वी एशिया के मुल्क थे, जैसे हिदुस्तान, बर्मा, इडोनीशिया, श्रीलका वगैरह—और उन सबमे बहुत फर्क था। फिर ऐसी कौनसी बात थी जो उन सबमे मौजूद थी ?

तो एक बात जो उन सबमे मौजूद थी वह यह थी कि वे सब पश्चिमी मुल्को की हुकूमत के खिलाफ थे। इस सवाल पर सबकी राय एक थी। दूसरी बात जो सबमे मौजूद थी वह यह थी कि सब समाजी तरक्की चाहते थे। इस सवाल पर भी सबकी राय एक थी। अगर हम काम करने के तरीको की बारीकियो मे जाते तो कोई समझौता मुश्किल होता। लेकिन जो मुल्क वहाँ जमा हुए थे उनमे इतनी समझदारी थी कि उन्होने उन बातो के बजाय जिन पर समझौता नही था, उन्ही बातो पर जोर दिया जिनके बारे मे सबकी राय एक थी।

वे राजनीतिक बराबरी लानेवाले लोग थे, योरप, अमरीका और एशिया और अफ्रीका के बीच बराबरी, यही ख्याल लोगो के दिमाग मे सबसे पहले आता था और उनमे से ज्यादातर लोग समाजी तौर पर भी बराबरी लानेवाले लोग थे, दोनो ही तरह के लोग, वह जो सब्र के साथ धीरे-धीरे बराबरी लाना चाहते थे और वह जो बेसब्री से फौरन बराबरी लाना चाहते थे। लेकिन मुझे इस बात का पक्का यकीन है कि वहाँ कुछ मुल्क ऐसे भी थे जिन्हे समाजी बराबरी के बारे मे कुछ भी मालूम नही था। लेकिन बराबरी लाने की जरू-

रत को लोग इतने आमतौर पर मानने लगे है कि किसी को उसके खिलाफ कुछ कहने की हिम्मत नही हो सकती थी।

मॉड . लेकिन आपके ख्याल मे इस मीटिंग से अमली नतीजे क्या निकले ?

नेहरू · उसका योरप और अमरीका के लोगो के सोचने के ढग पर, और एशिया के लोगो के सोचने के ढग पर भी, बहुत गहरा असर पडा, अलग-अलग तरह के असर थे यह।

जहाँ तक एशिया का सवाल है, इस मीटिंग से कुछ हद तक लोगो को यह महसूस हुआ कि वे सब एक है। जहाँ तक अमरीका और योरप का सवाल है, तो वहाँ लोगो को यह एहसास हुआ .एक तरह से वह इस बात पर कुछ चौंक-से गये कि एशिया के मुल्क, एशिया की कौमे एक साथ मिले और बुनियादी तौर पर पश्चिमी मुल्को की हुकूमत के खिलाफ आवाज उठाये, उसे चुनौती दे।

इसमे तो खैर कोई शक ही नही है कि धन-दौलत के एतबार से पश्चिमी मुल्क एशिया के मुल्को से कही ज्यादा आगे और कही ज्यादा ताकतवर है। लेकिन तरक्कीयाफ्ता होना और ताकतवर होना एक बात होती है और दूसरे को दबा लेने की ताकत रखना बिल्कुल ही दूसरी बात होती है। जाहिर है कि हिदुस्तान किसी ताकतवर मुल्क के कही पास भी नही पहुँचता। लेकिन किसी मुल्क के लिए हिदुस्तान को जीत लेना—फौज की मदद से भी—बहुत ही मुश्किल बात है। लोगो के मिजाज और तमाम दूसरी बातो को मिलाकर देखा जाये तो एशिया की ताकत इस बात मे है कि खुद अपने पास ताकत न होते हुए भी वह ताकत का मुकाबला कर सकता है। उसके पास दूसरो पर हमला करने की ताकत तो नही है लेकिन वह ऐसे हालात पैदा कर सकता है कि दूसरे मुल्क के लिए बडी मुश्किल पैदा हो जाये।

राजनीतिक है तो उससे लोगो पर एक खास किस्म का असर होता है, उनके दिमाग मे उस मदद के बारे मे कुछ शुवहे पैदा हो जाते है।

अगर, मान लीजिये, मदद सिर्फ कम्युनिस्टो के खतरे के खिलाफ लडने के लिए दी जाती है, या कम्युनिस्ट मुल्क महज पश्चिमी मुल्को के खतरे के खिलाफ लडने के लिए मदद देते है, तो उस मदद का एक खास रग होता है, उसमे एक किस्म का खोट होता है और इस गरज से जितनी ही ज्यादा इस किस्म की मदद कोई लेता है उसे उतना ही ज्यादा इस बात का एहसास रहता है कि वह पूरी तरह किसी दूसरे के भरोसे है,—और इसके अलावा यह बात तो खैर होती ही है कि उसे एक खास पालिसी का पावद रहना पडता है। किसी दूसरे के भरोसे रहना, चाहे वह सियासी मामलो मे हो या आर्थिक मामलो मे, कोई अच्छी बात नही है। यह बात इसलिए अच्छी नही है कि हमे जो वुनियादी काम करना है वह यह है कि लोगो मे अपने-आप पर भरोसा पैदा हो, वह यह समझने लगे कि हम भी कुछ कर सकते है, इस बात का जिक्र हम पहले भी कर आये है।

जब लडाई छिड जाती है तो मुल्क का हरएक आदमी यह महसूस करने लगता है कि उसे लडाई जीतने के लिए अपना सारा जोर लगा देना चाहिये। हर आदमी अपनी जान की बाजी लगा देता है। हमे लोगो मे यही जज्वा, इसी तरह की भावना पैदा करना है। लेकिन जितनी ज्यादा मदद हमे मिलती है उतना ही कम यह जज्वा पैदा होता है। आमतौर पर, बाहर से मदद मिलना कोई बुरी वात नही है। दरअसल पूरा अमरीका—उत्तरी भी और दक्षिणी भी—योरप से मदद पाकर ही इतनी तरक्की कर सका है। यहाँ तक कि स्कैंडीनेविया मे भी—जो आज इतना अमीर इलाका है—दूसरे मुल्को ने अपनी पूंजी लगायी थी। इनको जो मदद मिली थी वह सच्चे मानो मे मदद थी, उसके पीछे किसी किस्म का विचारो का झगडा नही था। लोगो ने इन मुल्को की तरक्की के लिए पूंजी लगायी थी, जैसे लोग आमतौर पर किसी कारोवार मे पूंजी लगाते है। लेकिन वदकिस्मती से आज इन झगडो की वजह से अव यह सवाल उतना सीधा-सादा नही रह गया है।

इसमे तो शक नही कि मदद वहुत जरूरी है। लेकिन मै यह ज़रूर सम-

झता हूँ कि इस बात का खतरा हमेशा रहता है—राजनीतिक और आर्थिक दोनो ही तरह का—कि कही मदद इस किस्म की न हो कि लोगो मे मेहनत से काम करने का जोश ही बाकी न रह जाये। यह बुरी बात है। इससे कही अच्छा है कि आदमी धीरे-धीरे आगे बढे लेकिन अपने-आप पर भरोसा रखे, दूसरे के भरोसे रहने से यह कही अच्छा है।

मॉड · मुझे यकीन है कि आप इस बात को औरो के मुकाबले मे ज्यादा आसानी से मान लेगे कि पश्चिमी मुल्को मे भी ऐसे लोग है जो नेकनीयती से मदद देने की जरूरत को समझते है, और आप इस बात को भी मान लेगे कि उन्हे अपने मुल्क के आम लोगो को यह समझाने मे बडी मुश्किल पडती है कि हिंदुस्तानियो की या इडोनेशियावालो की, या किसी और मुल्क के लोगो की मदद करने के लिए इतने डालर टैक्स और देना चाहिये। लेकिन क्या आप यह समझते है कि आगे चलकर कुछ अर्से बाद दुनिया मे आम लोग इस बात को समझने लगेगे कि इस वक्त दुनिया मे लोगो की आमदनियो मे जो इतना जमीन-आसमान का फर्क है उसे कम करने के लिए किसी किस्म का अतर्राष्ट्रीय इनकम-टैक्स जरूरी है, जिस तरह कि लोग अपने-अपने मुल्को मे इनकम-टैक्स को एक कुदरती बात समझने लगे है? आजकल कोई भी आदमी, मिसाल के तौर पर, कम खुशकिस्मत लोगो को बेरोजगारी के दिनो मे मदद देने पर एतराज नही करेगा।

क्या हम तमाम दुनिया मे इस तरह की समझ-बूझ पैदा होने की तरफ बढ रहे है कि इस किस्म की चीज अतर्राष्ट्रीय पैमाने पर मुमकिन हो सके?

नेहरू : हाँ, बढ तो रहे है, लेकिन काफी तेजी के साथ नही। मेरा ख्याल है कि इन सब बातो का ताल्लुक उस 'ठडी लडाई' से है जो इस वक्त दुनिया में चल रही है। अगर यह बात मिट जाये, दुनिया मे इस वक्त जो तनातनी है वह अगर दूर हो जाये, अगर लोगो मे डर और अदेशा कम हो जाये तो मै समझता हूँ कि हम ज्यादा तेजी से इस तरफ बढ सकते है। इस वक्त जो पैसा हथियारो पर खर्च किया जाता है उसे अगर इस काम में लगाया जाये तो उनसे दरअसल लोगो पर बोझ पडेगा नही। इस तरह वह इतना ही पैसा बचा लेगे।

तरक्की नही कर पाये हैं, जो फर्क है वह और बढता जायेगा। बजाय इसके कि यह बराबरी पैदा करे, इसका असर उल्टा होगा।

सच पूछा जाये तो तरक्कीयाफ्ता मुल्को के मुकाबले मे कम तरक्की-याफ्ता मुल्को को ऐटमी ताकत की ज्यादा जरूरत है, यानी उन मुल्को को जहाँ तरक्की कम हुई है बिजली पैदा करने के जरियो की ज्यादा सख्त जरूरत है। मिसाल के तौर पर अमरीका के पास बिजली पैदा करने के जरिये इतने आला दर्जे के है कि उनका काम ऐटमी ताकत के बिना भी चल सकता है। दरअसल उनके लिए इससे कोई फर्क नही पडता।

मॉड मै समझता हूँ कि इसके जवाब मे यह भी कहा जा सकता है कि इन इलाको मे जिनकी आर्थिक तरक्की की रफ्तार को धीमा रखा गया है आम-तौर पर इस्तेमाल किया जानेवाला बेशुमार ईंधन है, जैसे पानी से निकाली जानेवाली बिजली, जिसे अभी तक पूरी तरह इस्तेमाल भी नही किया गया है।

नेहरू हॉ, कभी-कभी यह जवाब दिया जा सकता है, लेकिन हमेशा नही। आमतौर पर इस्तेमाल किया जानेवाला ईंधन जहाँ मिलता है उसी जगह सस्ता होता है। लेकिन जहाँ इस तरह के ईंधन नही होते, वहाँ यह सौदा बहुत महँगा पडता है। हिंदुस्तान के ही कुछ हिस्सो को ले लीजिये, हजारो मील तक फैले हुए इलाके है लेकिन मै इन इलाको मे ऐटमी ताकत फौरन ले जा सकता हूँ।.

मॉड अभी उस दिन मैंने एक अखबार मे एक सम्पादकीय लेख देखा था जिसमे डा० भाभा के इस बयान का हवाला दिया गया था कि "हिंदुस्तान की तमाम नदियो से जितनी बिजली पैदा की जा सकती है, अगर वह सारी पैदा की जाने लगे तो उससे सिर्फ उसका सातवाँ हिस्सा ताकत हासिल की जा सकती है जितनी कि इस वक्त गोबर के उपले जलाकर हर साल हासिल की जाती है।"[1]

---

१. डा० होमी भाभा, भारत में ऐटम-विद्या के सबसे बड़े वैज्ञानिक हैं। वह अगस्त १९५५ में जेनेवा में अणु-शक्ति के संबंध में हुए सम्मेलन के अध्यक्ष

नेहरू : यह बहुत ही गैरमामूली बयान है। इसे लोगो ने गलत बताया है, यानी जितना फर्क इसमे बताया गया है उतना है नही। लेकिन जो बुनियादी बात कही गयी है वह सही है। मेरी राय मे डा० भाभा ने हिंदुस्तान की नदियो से पैदा की जा सकनेवाली बिजली का जो हिसाब लगाया है वह ठीक नही है। मेरा ख्याल है कि उनसे इससे ज्यादा बिजली पैदा की जा सकती है। जाहिर है, उन्होने इस वक्त के अदाजे से हिसाब लगाया है। लेकिन यह अदाजा तो बहुत बढ सकता है। अभी हमने इस सवाल की पूरी तरह छानबीन नही की है। हिंदुस्तान के नक्शे को देखिये हिमालय पहाड के सिलसिले को ले लीजिये। उसमे ताकत का अथाह खजाना है नदियाँ, खाने वगैरह-वगैरह। यह तो सच है कि आमतौर पर इस्तेमाल किया जानेवाला ईंधन ऐटमी ताकत से सस्ता होगा—कम-से-कम इस वक्त तो यही सूरत है, आगे चलकर क्या होगा कुछ कहा नही जा सकता—लेकिन इस ईंधन को ढोकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाना पड़ता है और ऐटमी ताकत को फौरन दूसरी जगह ले जाकर इस्तेमाल किया जा सकता है और ऐसी जगहो पर भी इस्तेमाल किया जा सकता है जहाँ आस-पास और कोई ईंधन नही मिलता।

सॉड : और फिर आमतौर पर इस्तेमाल किये जानेवाले ईंधनो को एक जगह से दूसरी जगह तक ले जाने के लिए अलग से एक इतजाम करना पडता है, मेहनत लगती है, आदमियो की ज़रूरत होती है, वगैरह-वगैरह।

नेहरू यही बात है। और हम ऐटमी ताकत पैदा करने के सवाल पर गौर कर रहे है। डा० भाभा ने जेनेवा मे कहा था कि दस, पद्रह या बीस बरस मे हमे, मसलन समन्दर के पानी से, वह चीजे बेशुमार मिल सकती है जिनसे ऐटमी ताकत पैदा की जा सकती है जिसका मतलब यह होगा कि हमे यह चीजे बहुत सस्ती मिल सकेगी और जितनी, हम चाहेगे उतनी मिलेगी।

सॉड जाहिर है आपने ऐटमी ताकत के सिलसिले मे जितनी भी बाते हुई है उन्हे बडे गौर से देखा है। क्या आप समझते है कि थोडे ही अर्से मे

थे। यह उद्धरण २४ दिसम्बर १९५५ के स्टेट्समैन (दिल्ली) के सम्पादकीय लेख से लिया गया है।

तरह समझे और अपने रवैये को इन तब्दीलियों को नज़र में रखकर बदलें। और इससे यह नतीजा निकाला जा सकता है—बल्कि निकलता है—कि आर्थिक मदद का, या किसी भी किस्म की मदद का मक़सद किसी मुल्क को सिर्फ़ अपनी तरफ़ मिला लेने से ऊँचा होना चाहिये।

लिबौर श्रौंड . अगर पश्चिमी मुल्को के किसी शहर की सड़क पर किसी समझदार अखबार पढनेवाले को रोककर, प्रधान मत्रीजी, उसके सामने आपका नाम लिया जाये तो यह नाम सुनते ही उसके दिमाग मे तटस्थता, किसी गुट में शामिल न होनेवाले राष्ट्रों, शाति के क्षेत्र या सह-अस्तित्व के ख्याल आयेगे। इसलिए कुदरती बात है कि मै आपसे इन सवालो पर कुछ रोशनी डालने की दरख्वास्त करूँ, मैं चाहूँगा कि आप इन विचारो की तह में जाये ताकि इन विचारो की एक साफ तस्वीर हमारे सामने आये क्योकि दुनिया में इन बातो को अकसर गलत तरीके से समझा जाता है।

शायद तटस्थता के सवाल से शुरू करना ठीक रहेगा।

मेरा ख्याल है कि ऐटमी लडाई की तबाही मे न फँसने की ख्वाहिश उससे कही बडे पैमाने पर लोगो मे मौजूद है जिस हद तक कि वहुत-से लोग मानने पर तैयार होगे। लेकिन इस सिलसिले मे दो रवैयो के बीच किसी किस्म का समझौता जरूरी है. पहला तो यह कि ऐसी हालत मे, जबकि आज सिर्फ कुछ इने-गिने औद्योगिक राष्ट्र ही बडे पैमाने पर लडाई लड़ने की ताकत रखते है, तटस्थ देश की हिफाजत का दारोमदार इसी बात पर है कि वह इस बात पर भरोसा रखे कि कोई ताकतवर कौम उस पर हमला नही करेगी। दूसरा यह कि एक ऐसे जमाने मे जब कि विचारधाराओ पर बहुत सख्त झगडा है हरएक का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह जिस बात को सही समझता हो उसके लिए उठकर लडे। अगर मै भूलता नही हूँ तो आपने अपने एक भाषण मे कहा था कि अगर कोई इन बडी-बडी ताकतो के झगडे मे किसी की तरफदारी नही करना चाहता तो यह जरूरी नहीं है कि वह विचारधाराओ के झगडे मे भी किसी की तरफदारी न करे। इन दोनो रवैयो का मेल किस तरह बिठाया जाये।

जवाहरलाल नेहरू . यह कहने की तो कोई वजह समझ में नही आती कि दुनिया मे सिर्फ दो विचारधाराएँ, दो नजरिये हो सकते है, समझ लीजिए, एक तो वह जिसकी नुमाइदगी इस वक्त कम्युनिस्ट रूस करता है और दूसरा वह जिसकी नुमाइदगी कुछ पश्चिमी मुल्क करते है।

यह तो इसान की सोचने की या काम करने की ताकत पर बहुत सख्त हदबदी लगा देना है। यह तो सच है कि ये दो विचारधाराएँ एक तरह से इस वक्त तमाम दुनिया पर छायी हुई है और उनमे आपस मे टक्कर होती रहती है। इसकी वजह कुछ हद तक तो यह है कि इन दो विचारधाराओ के पीछे बेशुमार फौजी और आर्थिक ताकत है। लेकिन जो चीज छायी हुई है वह विचारधारा नही है बल्कि उसके पीछे की यह ताकत है।

लेकिन अब इसी ताकत के बढते जाने से एक नयी सूरत, एक नयी परिस्थिति पैदा हो गयी है। इसके नतीजे के तौर पर ऐटमी हथियार, बल्कि उनसे भी खतरनाक हथियार तैयार हुए है, जिन्होने हर मुल्क को नये सिरे से सोचने पर मजबूर कर दिया है। जब आदमी के सामने पूरी तबाही का खतरा हो तब लडाई उसका कोई हल नही होता। दरअसल उससे हालत और भी बदतर हो जाती है।

तो, जहाँ तक हिदुस्तान का सवाल है—और मै खासतौर पर सिर्फ हिदुस्तान की ही बात कर रहा हूँ, हालाँकि कुछ हद तक यह बात एशिया के दूसरे मुल्को पर भी लागू हो सकती है—तो हमारे बारे मे कोई फैसला इसी बुनियाद पर किया जाना चाहिये कि हमारा पिछला इतिहास, हमारी रवायात, हमारी परम्पराएँ क्या रही है। तो हिदुस्तान का पिछला इतिहास, हिदुस्तान की रवायात, उसकी परम्पराएँ तो यह रही है कि हम कि हमने राजनीतिक आजादी के लिए, आर्थिक आजादी के लिए, अपनी हकीकत को पहचानने के लिए सघर्ष किया है, हम इस बात के लिए लडे है कि हम अपने सोचने के तरीके के मुताबिक तरक्की करे। हिदुस्तान मे हमारी टक्कर अग्रेजो की हुकूमत से हुई और हमने उसे चुनौती दी, लेकिन हमारी चुनौती फौजी नही थी—वह तो हम दे भी नही सकते थे—हमने उसे शाति के तरीके से चुनौती दी थी। बहुत-सी बातो की वजह से हम कामयाब हुए। इसलिए हम किसी

मसले को हल करने के लिए फौजी तरीके के मुकाबले मे शाति के तरीके को ज्यादा अच्छा समझते हैं—इस बात के अलावा भी कि किसी मसले को फौजी तरीके से हल करना हमारे बस मे है भी नही। इसलिए अपनी रवायात और अपने मिजाज की वजह से, और अपने सोचने के ढग की वजह से भी, हम इसी नतीजे पर पहुँचे कि मौजूदा हालात मे फौजी तरीका किसी मसले को हल करने का सही तरीका नही है—हालाँकि दुनिया के इतिहास मे इस तरीके का बहुत बडा हाथ रहा है। लाज़िमी तौर तर हम इस नतीजे पर पहुँचे है कि फौजी तरीके से बचना चाहिये। लडाई से बचना चाहिये। और अगर लडाई से बचकर रहना है तो जहाँ तक मुमकिन हो लडाई के ढग से सोचना भी नही चाहिये।

तो फिर दूसरा रास्ता क्या है? ठंडी लडाई?

ठडी लडाई का मतलब तो यह होता है कि हम हर वक्त लडाई की ही वात सोचते रहे, लडाई की तैयारियो की बात सोचते रहे और लगातार हमारे सामने यह खतरा बना रहे कि न जाने कब सचमुच लडाई शुरू हो जाये।

एक बात अब काफी साफ तौर पर समझ मे आने लगी है, खासतौर पर जेनेवा मे चार बडी ताकतो की काफ्रेस के बाद से।

कॉड आपका मतलब चार राज्यो के प्रधानो की काफ्रेस से है?

नेहरू जी हाँ, जेनेवा मे चार राज्यो के प्रधानो की काफ्रेस के बाद से इस बात को लोग मानने लगे है कि ऐटमी लडाई किसी भी मसले को हल करने मे कारगर नही हो सकती और उससे बचना चाहिये।

इससे नतीजा यह निकलता है कि लडाई के अलावा कोई दूसरा तरीका आजमाया जाना चाहिये, चाहे उस तरीके से कामयाबी इतनी जल्दी न भी मिले। इसमे मुश्किल तो पडेगी, जिन मसलो को हल करना है वह भी काफी मुश्किल है। लेकिन एक बार इस नतीजे पर पहुँच जाने के बाद कि लडाई से बचना चाहिये, ठडी लडाई के रास्ते को अपनाने मे भी कोई तुक दिखायी नही देता क्योकि ठडी लड़ाई का उसी वक्त कोई मतलब हो सकता है जब उसके बाद सचमुच की लडाई हो। अगर इस सचमुच की लडाई को रोकना है तो कोई दूसरा तरीका निकालना पडेगा। लेकिन इस ठडी लडाई की वजह से

दूसरे तरीके मालूम करने मे अडचन होती है। आप कह सकते है कि यह तो सही है लेकिन हम क्या करे? हम तो ठडी लडाई नही चाहते लेकिन दूसरी तरफवाले चाहते है और इसलिए हमे भी उनके जवाब मे वैसा ही रवैया अख्तियार करना पडता है। मेरी राय मे यह कोई माकूल जवाब नही है क्योकि मुझे यकीन है कि अगर एक तरफवाले शांति के रास्ते पर टिके रहे तो आखिर मे चलकर दूसरी तरफवालो को भी उसी रास्ते पर चलने पर मजबूर होना पड़ेगा।

मै तो समझता हूँ कि लोग जो फौजी ताकत की बातें करते है या धमकियाँ देते है उसकी वजह यह है कि वह डरते है कि ऐसा न करने से कही लोग यह न समझे कि हम दूसरी तरफवालो के साथ रिआयत कर रहे है या कही यह न मालूम हो कि हमने उनकी विचारधारा के सामने घुटने टेक दिये है। नतीजा यह होता है कि दूसरा भी वैसी ही बाते करता है। जाहिर है कि इस चक्कर को तोडना नामुमकिन हो जाता है।

तो जहाँ तक विचारधाराओ का सवाल है तो हम, मिसाल के तौर पर, कम्युनिस्ट रूस के विचारो की पृष्ठभूमि को कतई नही मानते। लेकिन आर्थिक और दूसरे मामलो में अमरीका की पृष्ठभूमि न तो हमारे दृष्टिकोण से मेल खाती है और न इन मसलो की तरफ हमारा इस वक्त जो रवैया है उससे मेल खाती है। राजनीति के एतबार से तो हमारे यहाँ ससदीय लोकतत्र है, जिसे 'पार्लियामेटरी डेमाक्रेसी' कहते है, जो पश्चिम वालो के दृष्टिकोण के बहुत नजदीक है। हम गहरी आज़ादी मे, नागरिक स्वतत्रता मे यकीन रखते है, हम इसमे यकीन रखते है कि लोगो को अपनी बात कहने की, अपनी राय ज़ाहिर करने की पूरी आज़ादी हो, और इसी तरह की दूसरी बातो मे हम यकीन रखते है। लेकिन हम तेज़ी से तरक्की करना चाहते है और हमारे मुल्क मे लोगो के बीच जो बहुत बडा फर्क है उसे हम दूर किया चाहते है, रुपये-पैसे के मामले मे जो फर्क है या दूसरी बातो के मामले मे जो फर्क है। तो, हमारी राय यह है कि अगर हमने वह रास्ता अख्तियार किया जिसे पूजीवादी रास्ता कहा जा सकता है, तो इस बात का खतरा है कि यह फर्क और बढता जायेगा। यह तो मुमकिन है कि हम ज्यादा चीज़ें पैदा करने लगे—और बेशक हम करेगे—

लेकिन उससे अमीर कुछ कम अमीर हो जायेंगे और आखिर में चलकर मुमकिन है गरीबों की हालत कुछ सुधर जाये—हालाँकि इसमें थोड़ा वक्त लगेगा।

इसी बीच में हमें अपने समाजी मसलों को भी हल करना है। इसलिए हम उस रास्ते को अपनाने पर मजबूर हैं जिसे हम समाजवादी रास्ता कह सकते हैं; यह रास्ता समाजवादी जरूर है लेकिन इस माने में नहीं कि हम बिल्कुल लकीर के फकीर बने रहेंगे। हम इसी के मुताबिक अपनी योजनाएँ बनाने की कोशिश करते हैं और यह बात हमारा सोचने का पहले जो तरीका था उससे पूरी तरह मेल खाती है, हमारा सोचने का यह तरीका पश्चिमी मुल्कों और सोवियत यूनियन और दूसरे मुल्कों के बीच यह झगड़ा शुरू होने से बहुत पहले कायम हो चुका था। अपनी कौमी तहरीक के जरिये हम पहले ही से इसी ढर्रे पर सोच रहे थे। हमारा सोचने का तरीका हमेशा से अहिंसा और शांति का तरीका था।

आपको याद होगा कि हम कई टेढ़े मसलों को शांति के तरीकों से हल कर चुके हैं।

देसी रजवाड़ों के सवाल को ले लीजिये। जरा ख्याल कीजिये, हिंदुस्तान में पाँच सौ से ज्यादा देसी रियासतें थीं जो कमोबेश खुदमुख्तार थीं, यहाँ तक कि उन्हें आजाद रियासतें समझा जाता था। हर आदमी यही समझता था कि उनकी वजह से हमें काफी मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। लेकिन इस मसले को हमने कुछ ही महीनों में, बल्कि कहना चाहिये कुछ ही हफ्तों में तै कर लिया—और सो भी शांति के साथ। ऐसा क्यों हुआ? कैसे हुआ? तो जाहिर बात है, हालात का तकाजा था, मुल्क में जो कुछ हो रहा था उसका उन पर दबाव पड़ा; एक तरफ तो भारत की नयी सरकार का दबाव था और दूसरी तरफ खुद इन रियासतों के रहनेवालों का दबाव था। लेकिन इसमें बहुत बड़ा हाथ इस बात का भी था कि इन देसी रजवाड़ों की तरफ हमारा रवैया शांति और मेलजोल का रवैया था। हमने उनकी तरफ फौजी धमकियों वगैरह का रवैया अख्तियार नहीं किया। हम चाहते तो ऐसा भी कर सकते थे। लेकिन इसके बजाय कुछ तो हमारे शांति और दोस्ती के रवैये की वजह से और कुछ वक़्त के तकाजे की वजह से यह बहुत ही टेढ़ा मसला हल हो गया।

फिर जमीन के सवाल के बारे में हमारे रवैये को ले लीजिए।

मैं इस बात को मानता हूँ कि इस सिलसिले में हम जिस रफ़्तार से आगे बढ़े हैं उससे मैं बहुत मुतमइन नहीं हूँ मुझे पूरा संतोष नहीं है। फिर भी बड़े-बड़े ज़मींदारों की ज़मींदारी को खत्म करके बहुत आगे बढ़े हैं और ज़मीन को ज़्यादा बराबरी से बाँटने के सिलसिले में हम कई तरह से आगे बढ़ रहे हैं। यह एक टेढ़ा सवाल है। यह काम भी हमने शांति के तरीक़े से किया, मुआवज़ा देकर। पूरा मुआवज़ा तो नहीं दिया...वह मुमकिन भी नहीं था।

मेरा कहने का मतलब यह है कि इन टेढ़े सवालों को, जिनमें बहुत-से झगड़े हैं, वर्गों के झगड़े हैं, शांति के साथ और मिल-जुलकर दोस्ती से तै किया जा सकता है। हम इस बात से इंकार नहीं करते कि वर्गों के बीच झगड़े हैं लेकिन हम इस बात को भी ज़रूरी नहीं समझते कि वर्गों के इन झगड़ों को और बढ़ाकर, उन पर लड़ाई-झगड़ा और मारपीट करके ही उन्हें तै किया जा सकता है। सबसे पहले तो आम जनता का दबाव होता है; दूसरे जो लोग हमारे साथ नहीं हैं उन्हें अपनी तरफ़ लाने के लिए उन्हें हटा देने या खत्म कर देने के बजाय उनकी तरफ़ दोस्ती का रवैया रखना चाहिये। मिसाल के तौर पर कम्युनिस्टों के सोचने के तरीक़े में और हमारे तरीक़े में यह एक बुनियादी फ़र्क़ है। हमारा सोचने का तरीक़ा, मिसाल के तौर पर अमरीका के सोचने के तरीक़े से भी अलग है। इसलिए मेरी समझ में कोई वजह नहीं आती कि हमारे सामने सिर्फ़ यही दो अलग-अलग रास्ते रखकर हमसे कहा जाये कि या तो यह तरीक़ा पसंद कर लो या वह तरीक़ा। हम तो इन दोनों ही तरीक़ों से अलग तरीक़े से सोचते हैं।...

मॉड : प्रधान मंत्रीजी, आपने जो जवाब दिया है उसमें ज़्यादातर विचार-धाराओं के पहलू पर ही रोशनी डाली है। अगर हम, मिसाल के तौर पर अमरीका के किसी अखबार पढ़नेवाले औसत आदमी को लें तो वह शायद ताक़त के सवाल पर ज़्यादा ज़ोर देगा।

हमारा अमरीका का यह अखबार पढनेवाला जो सवाल पूछेगा वह यह है : मान लीजिये कोई विचारधारा इतनी लडाकू हो जाती है कि उससे फौजी हमले का खतरा पैदा हो जाता है, ऐसी हालत मे किसी तटस्थ देश का क्या रवैया होगा ?

नेहरू : क्या आपका सवाल यह है कि अगर कोई ताकतवर मुल्क हिंदुस्तान पर हमला कर दे तो हमारा रवैया क्या होगा ?

मॉड . नही, यह सवाल तो मै बाद मे पूछूंगा। मेरा मतलब यह है कि अगर ताकतवर पडोसी की विचारधारा इतनी लडाकू शक्ल अख्तियार कर ले कि उससे फौजी हमले का अदेशा पैदा हो जाये—हमला अभी तक उसने किया नही है, . हिटलरी जर्मनी के पडोस मे चेकोस्लोवाकिया की मिसाल को ले लीजिये।

नेहरू ' आपने मुझसे एक ऐसा सवाल पूछा है जिसका मेरे नजदीक सिर्फ एक ही जवाब हो सकता है, वह यह कि चेकोस्लोवाकिया को हिटलरी जर्मनी के खिलाफ लडना चाहिये था, आखिर मे चलकर नतीजा कुछ भी होता। जिस वक्त हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा किया उससे कुछ ही दिन पहले १९३८ मे मै चेकोस्लोवाकिया मे था। जो कुछ वहॉ हुआ उसे चेकोस्लोवाकिया का चुपचाप बर्दाश्त कर लेना मेरी समझ मे कभी नही आया। लेकिन यहॉ हिदुस्तान मे हम ऐसी बातो के खिलाफ लड़ने के आदी थे। मै इस बात को मानता हूँ कि चेकोस्लोवाकिया के लिए हिटलरी जर्मनी का मुकाबला करना बहुत मुश्किल काम था।

मॉड : खासतौर पर उसकी हिम्मत तोडकर पहले से जो जमीन तैयार कर ली गयी थी, उसके बाद।.

नेहरू : हॉ, यह तो सच है। मै उस माने मे शाति का अधा पुजारी नही हूँ। मै इस बात को मानता हूँ कि कुछ सूरतो मे आदमी को लडना पडता है। इसमे इतना ज्यादा सवाल इस बात का नही होता कि लोग किन उसूलो को मानते है जितना कि इस बात का कि उनकी रवायात क्या रही है; इस बात का कि वह क्या कर सकते है। गॉधीजी तक, जो शाति के बहुत बडे पुजारी थे, हमेशा यही कहते थे कि डरने से तो लड़ लेना अच्छा है । भाग जाने से कही अच्छा है कि आदमी हिसा का सहारा ले। उनका मतलब यह था कि हमे किसी

नेहरू　जी हाँ, पचशील। उनमे खासतौर पर जो वात कही गयी है वह यह कि कोई हमला नही होना चाहिये और किसी किस्म की दखलदाजी, कोई हस्तक्षेप नही होना चाहिये, यहाँ तक कि दूसरे मुल्को के सोचने के तरीके मे, उसकी विचारधारा मे भी कोई हस्तक्षेप नही होना चाहिये। अगर इन पाँच उसूलो को मान लिया जाये और उन पर चला जाये तो खतरे दूर हो जायेंगे, तनातनी कम हो जायेगी, लडाई का डर कम होगा, और हमले और दखलदाजी का डर तो बिलकुल मिट जायेगा।

लेकिन अगर सोवियत यूनियन और अमरीका जैसे दो ताकतवर मुल्क सिर्फ यह कहे कि हम हिंदुस्तान की या वर्मा की　तटस्थता को नही छेडेगे तो आजकल के हालात मे मेरे नजदीक उनकी इस गारटी का सचमुच कोई मतलब नही है। अगर लडाई न हो तो वहुत अच्छी वात है। लेकिन अगर लडाई होती है तो फिर कोई गारटी कारगर नही रह जायेगी। इसलिए लडाई से बचना ही अच्छा है।

मॉड　प्रधान मत्रीजी, आपने अपनी बातचीत के दौरान मे एक ऐसी बात का जिक्र किया है जो मुझे वहुत अहम मालूम होती है। मेरा मतलब आपकी उस बात से है जो आपने लोगो के दिमागो पर असर डालने के आजकल के नये-नये और बहुत ही कारगर तरीको के बारे मे कही है, जिसे हम कह सकते है दूर से बैठे-बैठे आम लोगो के दिमाग मे कुछ ख्यालात बिठा देना। पिछले बीस-बाईस वरसो मे हमे इस बात की वहुत-सी मिसाले मिलती हैं कि किसी मुल्क के लोगो की राय को किस तरह ऐसे साँचे मे ढाल दिया गया कि वह सीधे-सीधे किसी दूसरे मुल्क के दवाव मे रहना मजूर कर ले। इस काम को करने के जो तरीके है उनमे बहुत तरक्की कर ली गयी है, अब तो उन्हे लगभग बिल्कुल साइस का दर्जा हासिल है। किसी मुल्क की आर्थिक हालत से भी इसमे कामयाव होने मे वडी मदद मिलती है। इन दोनो वातो को देखते हुए क्या इस वात का खतरा नही है कि "चोरी-छुपे लोगो के दिमागो मे कुछ खास ख्यालात बिठाकर" हिंदुस्तान जैसे मुल्क मे—या किसी भी दूसरे मुल्क मे—किसी दूसरे ताकतवर मुल्क के घुमने के लिए जमीन तैयार की जाये?

नेहरू　हाँ, खतरा तो है। लेकिन यह खतरा ठोस शक्ल उसी वक्त

अख्तियार कर सकता है जब उस मुल्क मे एक किस्म का खालीपन हो। मेरा मतलब है कि वहाँ के लोगो के दिमाग खाली हो या उस मुल्क के आम हालात मे एक खोखलापन हो।

अगर कोई बाहर की जमाअत या सगठन इस तरह का प्रचार बहुत बडे पैमाने पर करे तो बात दूसरी है। उससे तो फर्क पडता है। लेकिन यह फर्क फिर भी दो वजहो से एक खास हद तक ही होगा। पहली वजह तो यह कि, जैसा मै पहले भी कह चुका हूँ; सवाल इस बात का होता है कि प्रचार करने के लिए उस मुल्क मे किस हद तक पहुँचा जा सकता है। और दूसरे यह कि उस मुल्क मे प्रचार के लिए मैदान साफ हो। मेरा कहने का मतलब यह है कि यहाँ हिदुस्तान मे हम इस किस्म की चीजो को ज्यादा नही वढने देते, हम पूरी तरह तो नही लेकिन कुछ हद तक इन बातो को दूर रख सकते है, विचार तो आते है लेकिन अगर हम उनसे वचकर रहे तो उनका उतना गहरा असर नही हो सकता। यानी अगर हम किसी खास ढर्रे पर सोच रहे हो जिसकी वजह से हमारे अपने दिमाग खाली न हो। इस तरह का प्रचार उन्ही मुल्को में होता है जहाँ लोगो के दिमागो मे यह खालीपन होता है, जहाँ लोगो मे सिर्फ निराशा और मायूसी होती है।

सॉड . मेरे ख्याल मे आपने अभी तक जो कुछ कहा है उससे उस दूसरे विचार का भी मतलव साफ हो जाता है जिसे हम शाति का क्षेत्र कहते है।

अगर मै सही समझा हूँ तो इसका मतलब उस इलाके से है जो इस बात का फैसला कर चुका है कि वह मौजूदा तनातनी को और वढायेगा नही, यानी वह मुल्क जो यह फैसला कर चुके है कि इस वक्त दुनिया की राजनीति मे जो तनातनी चल रही है उसे वह और नही बढायेगे। इस सिलसिले मे भी मै अपने किसी पश्चिमी मुल्क के उस फर्जी शहरी के नजरिये से बहस करने की कोशिश कर रहा हूँ। वह कह सकता है कि इन मुल्को ने तो तटस्थ रहने का, झगडो से अलग रहने का फैसला कर लिया और हथियारवदी का सारा वोझ उन वड़ी-वडी ताकतो के कधो पर डाल दिया जिन पर आजकल की दुनिया मे एक सतुलन वनाये रखने की जिम्मेदारी है।

वह यह दलील पेश करेगा . कोई मुल्क एकतरफा तरीके से तो हथियार-

को छोड देने पर मजबूर होते जा रहे है। लोग न चाहते हुए भी इस बात को मानने लगे है कि अब लडाई की बात सोचना भी मुमकिन नही रह गया है और जैसे-तैसे करके हम आज मिल-जुलकर साथ रहने के जमाने मे पहुँच गये है, हम सह-अस्तित्व के युग मे आ गये है।

लेकिन क्या यह सह-अस्तित्व जो हमारे ऊपर जबर्दस्ती थोप दिया गया है ज्यादा दिन चल सकेगा? जब आखिर मे चलकर किसी तरफ दूसरी तरफ के मुकाबले मे बहुत ज्यादा हथियार हो जायेगे, क्या तब भी यह सह-अस्तित्व कायम रह सकेगा? दूसरे लफ्जो मे क्या जो हथियार इस वक्त है वह हमेशा के लिए लडाई को रोक सकते है? या आगे चलकर यह मुमकिन है कि कोई नया हथियार, इससे भी खौफनाक हथियार ईजाद कर लिया जाये और सारा झगडा फिर नये सिरे से शुरू हो जाये?

नेहरू मुझे ऐटमी हथियार बनाने वाले बडे-बडे साइसदानो ने बताया है कि यह बात बिल्कुल मुमकिन है कि अगले दस या बीस बरस मे ये हाइड्रोजन बम भी बहुत आसानी से और बहुत कम पैसो मे बनाये जाने लगे।

तो यह तो बहुत ही खतरनाक बात है क्योकि अगर बडी-बडी ताकते आपस मे कोई सुलह-समझौता कर भी ले तब भी इस बात का खतरा रहेगा कि कोई छोटा-सा झगडालू मुल्क या कई छोटे-छोटे मुल्क मिलकर दुनिया के किसी हिस्से पर धौस जमाने की कोशिश करे। यह बहुत ही भयानक बात है। दरअसल इसका इलाज इसके अलावा और कोई नही है कि सारी दुनिया मे इसके खिलाफ एक जबर्दस्त लहर पैदा कर दी जाये। बिल्कुल वैसी ही बात है जैसे हम चोर-डाकुओ से पेश आते है। हमारे पास उन्हे रोकने के लिए पुलिस होती है। लेकिन चोरी-डकैती अगर बद होती है तो वह पुलिस की वजह से नही बल्कि आम लोगो की राय की वजह से बद होती है, क्योकि आम लोग चोर-डाकुओ को पसद नही करते।

मॉउ खैर मुहावरे की बात छोड दीजिये कि दाँत मे जब दर्द होता है तो लोग कहते यही है कि इतना दर्द है कि बर्दाश्त नही होता, लेकिन मालूम यह होता है कि इसान सब-कुछ बर्दाश्त कर सकता है। जिस वक्त बडे-बडे बम बरसाने वाले हवाई जहाज बने थे उस वक्त लोग यही कहते थे कि अब इसके

वाद कभी लडाई नही होगी, लेकिन अब इन्ही हवाई जहाजो को वहुत पुराने जमाने का हथियार समझा जाने लगा है। या मिसाल के तौर पर अभी कुछ ही हफ्ते पहले मै हिरोशिमा मे था। मैंने देखा कि वह शहर बिल्कुल नया वन गया है, लोग अपने-अपने काम मे लगे हुए थे, लडाई के घाव भर गये थे और जो लोग मर गये थे उन्हे लोग भूल चुके थे। मुझे तो ऐसा लगता है कि लडाई की सबसे तकलीफदेह बात यह होती है कि जो लोग उसमे जिदा बच जाते है वही उसके बारे मे वाते कर सकते है। तो क्या यह मुमकिन नही है कि इसान इन नयी तबाहियो को भी बर्दाश्त कर लेगा और इससे भी ज्यादा खौफनाक बातो की तरफ जायेगा ?

नेहरू · मुमकिन क्यो नही है, इसका कतई खतरा है। इससे दो वातो का पता चलता है. एक तरफ तो लगातार वढती हुई तबाही और दूसरी तरफ दुनिया मे तवाही के वाद भी दुबारा अपने पैरो पर खडे हो जाने की हैरत-अगेज कूवत, और आखिर मे चलकर यही कूवत बाकी रहेगी।

साँड : शाति के सिलसिले मे ही यह सवाल भी उठता है कि अतर्राष्ट्रीय सस्थाएँ कितनी कारगर है। अगर हम यह कहे कि सभी अतर्राष्ट्रीय झगडो का फैसला शाति के तरीको से होना चाहिये, तो इसका मतलव तो यह है कि हमे पहले यह मान लेना पडेगा कि कोई अतर्राष्ट्रीय सगठन ऐसा है जो लोगो की सही ख्वाहिशो को, उनकी उचित माँगो को पूरा कर सकता है। अगर ऐसा कोई सगठन, कोई ऐसी मशीन नही है तो शाति के तरीको से झगडो का फैसला करने की बात सरासर धोखे की टट्टी है। आज लोगो की, मुल्को की और कौमो वगैरह की कुछ सही ख्वाहिशे है, लेकिन अगर इन्हे शाति के साथ पूरा करने का कोई रास्ता न निकाला गया तो फिर तो उनका आखिरी फैसला लडाई से ही होगा। प्रधान मत्रीजी, क्या आप समझते है कि आजकल की अतर्राष्ट्रीय सस्थाएँ इस काम को पूरा कर सकती है ?

नेहरू मै यह कहना चाहूँगा कि उनमे इस काम को पूरा करने की ताकत धीरे-धीरे लेकिन लगातार वढती जा रही है।

वह अभी तक इस खतरे को पूरी तरह दूर तो नही कर सकी है लेकिन आज वह इस खतरे को रोक जरूर सकती है; वह लोगो पर रोकथाम रख

सकती है और लोगो को सोचने का मौका दे सकती है। यह बहुत बडी बात है।

मुझे इसमे जरा भी शक नही है कि यूनाइटेड नेशस, सयुक्त राष्ट्र-सघ,—फैसलो को लागू करवाने मे अपनी तमाम कमजोरियो के बावजूद—दुनिया मे शाति कायम रखने मे एक बहुत बडी ताकत साबित हुआ है, और इस हैसियत से उसकी ताकत और बढ सकती है। इसका सारा दारोमदार इस पर है कि लोगो की राय बहुत बडे पैमाने पर इसके हक मे हो।

इसके अलावा मै यह भी समझता हूँ कि बहुत ज्यादा ताकत का एक जगह इकट्ठा हो जाना हमेशा खतरनाक होता है। इसका क्या इलाज है, मै नही जानता। यह सिलसिला बहुत धीरे-धीरे आगे बढता है। चाहे आर्थिक ताकत के एक जगह इकट्ठा हो जाने का सवाल हो, या फौजी ताकत के या किसी और किस्म की ताकत के जिसके हाथ मे भी ताकत इकट्ठा हो जाती है उसे इसका नशा-सा चढ जाता है। इसके अलावा सिर्फ समाज-दुश्मन ताकतो मे ही नहि बल्कि उन लोगो मे भी, जिन्हे आप "धुन के पक्के भले लोग" कह सकते हैं, इस तरह सोचने की एक आदत पायी जाती है कि वे दूसरो पर जबर्दस्ती अपनी भलाई थोप दे। इससे झगडे पैदा होते है। मै यकीन के साथ नही कह सकता कि ज्यादा झगडे किसकी वजह से पैदा होते है अपनी धुन के पक्के उन भले लोगो की वजह से जो अपने जिंदगी के तरीके को ही सही समझते है और उसे दूसरो पर थोप देना चाहते है या बुरे लोगो की वजह से। जो लोग बुरे होते है उनके बारे मे तो कम-से-कम यह मालूम रहता है कि वे बुरे हैं। लेकिन धुन के पक्के भले लोग तो नेकी का जामा पहनकर आते है।

यहाँ भी वही दूसरो के मामले मे दखल देने का सवाल आ जाता है। यहाँ हिंदुस्तान मे तो हमारा सोचने का तरीका यह रहा है कि हम दूसरो के धर्म मे दखल नही देते। हर आदमी को इस बात की पूरी आजादी है कि वह जैसे चाहे मुक्ति पाने की कोशिश करे। आमतौर पर इसकी वजह से उसके पडोसी को कोई परेशानी नही होती। लेकिन जो ताकतवर मजहब थे, जिन्होने दूर-दूर तक जाकर अपना झडा गाडा, उनका तरीका इससे अलग था। तो, दोनो ही की तरफ से बहुत-सी बाते कही जा सकती है। मै दोनो मे से किसी की बुराई

नही कर रहा। लेकिन आज हो यह रहा है कि आर्थिक विचारो की हालत भी दूर-दूर तक जाकर अपना झडा गाडनेवाले मजहबो जैसी हो गयी है।

क्रॉड . बहुत ताकतवर हथियारो और दूसरे मुल्को मे पैसा लगाकर वहाँ अपने पैर जमा लेने वगैरह की वजह से धावे मारकर दूर-दूर तक अपने झडे गाडनेवाले इन विचारो ने कमजोर मुल्को के सामने, खासतौर पर दक्षिण-पूर्वी एशिया मे, एक बहुत बडा मसला खडा कर दिया है, जिसे हम शायद नये-साम्राज्यवाद का मसला कह सकते हैं या अगर ज्यादा भोडे तरीके से कहे तो हम इसे इन मुल्को को भी "लैटिन अमरीका के मुल्को जैसा बना देने" का मसला कह सकते हैं।

प्रधान मत्रीजी, क्या आपका ख्याल यह नही है कि आज बडी ताकतो का रुख यह हो गया है कि अगर उन्हे दोस्त नही मिलते तो वे इस बात का इतजाम कर लेती है कि कुछ मुल्क उनका दुमछल्ला बनकर रहे? क्या मुल्को को लैटिन अमरीका के मुल्को जैसा बना देने का यह रुख बहुत बडे खतरे की बात नही है?

नेहरू यह खतरा है तो। और सारी दुनिया मे है। यह वात कुछ बडे मुल्को पर भी लागू हो सकती है।

जैसे आर्थिक मैदान मे आर्थिक ताकत का रुख इजारेदारी की तरफ और ज्यादा-से-ज्यादा ताकत एक जगह इकट्ठा कर लेने की तरफ होता है, या फौजी मैदान मे भी आज सचमुच दो ही मुल्क बहुत वडे और ताकतवर है, बाकी तो उनसे बहुत पीछे है।...और ये ताकतवर मुल्क दूसरे मुल्को को अपनी मर्जी के मुताबिक चलाना चाहते है, हालाँकि यह भी एक हद तक ही मुमकिन होता है। इसके रास्ते मे कई रुकावटे होती है। पहली तो यही रुकावट होती है कि उस मुल्क के रहनेवाले खुद इस वात के बारे मे क्या सोचते है, फिर और भी रुकावटे होती है जैसे कौमी जज्बा या राष्ट्रवाद की भावना, हर मुल्क के लोगो की यह कुदरती ख्वाहिश कि वह किसी दूसरे मुल्क के दवाव मे न रहे। कुछ कहा नही जा सकता कि आखिर मे चलकर इन दोनो मे से किसका पलडा भारी बैठे। लेकिन जैसा कि मै कह चुका हूँ, ऐसा मालूम होता है कि हम अव उस मजिल पर पहुँच गये है जिससे आगे अब किसी मुल्क के लिए किसी दूसरे

मुल्क को और ज्यादा दवाकर रखना मुमकिन नही है। एक हद खिच गयी है और अगर कोई ताकतवर मुल्क या कई ताकतवर मुल्क मिलकर किसी ऐसे मुल्क को दवाना चाहते है, जो फर्ज कर लीजिये, दोनो मे से किसी भी गुट के साथ नही है, तो दूसरा ताकतवर गुट भी वहाँ अपना असर जमाना चाहता है और उस इलाके मे एक झगडा उठ खडा होता है। कहने का मतलव यह कि अव इस वात का खतरा रहने लगा है कि अगर कोई ताकतवर मुल्क दूसरे के असर के इलाके मे कोई दखल दे तो लडाई छिड जायेगी। यह वात खुद मुल्को को दूसरे मुल्को मे दखल देने से रोकती है।

मै आपको एक मिसाल देता हूँ। जेनेवा कान्फ्रेंस मे इडो-चायना के सवाल की मिसाल ले लीजिये। उस वक्त इडो-चायना मे लडाई चल रही थी। हल यह निकाला गया कि लडाई रोक दी जाये और दोनो वडी ताकते इस वात को मान ले कि उनमे से कोई भी दखल नही देगा। एक तरफ तो चीन को यह डर था कि कही इडो-चायना को उस पर हमला करने के लिए अड्डा न वना लिया जाये। दूसरी तरफ पश्चिमी ताकतो को यह डर था कि कही ऐसा न हो कि इडो-चायना कम्युनिस्ट चीन का ही एक हिस्सा वन जाये और दूसरे मुल्को पर हमला करने के लिए अड्डे की तरह इस्तेमाल किया जाये। तो दोनो तरफ से यह डर था। इस डर को दूर करने का सिर्फ यह तरीका था कि दोनो ही ताकते दखल न देने पर राजी हो और इडो-चायना को अपनी किस्मत का फैसला खुद करने के लिए छोड दे।

उसे इसमे कामयावी मिली या नही, यह दूसरा सवाल है। लेकिन रुख यही था। असल वात है दखल न देना, क्योकि आप दखल देगे तो दूसरा भी दखल देगा, फिर झगडा होगा और इसी झगडे से वढते-वढते फिर लडाई शुरू हो जायेगी।

मॉड एशिया में अमरीका की जो भूमिका दिन-व-दिन वढती जा रही है उसे देखते हुए, प्रधान मन्त्रीजी, क्या आप मुझे इस वात की इजाज़त देगे कि भारत-अमरीकी सवधो के इस वहुत ही वुनियादी सवाल के वारे मे कुछ कहने के लिए आपसे कहूँ?

मै नही समझता कि यह वताने की कोई जरूरत है कि ये ताल्लुकात इतने

अहम क्यो हैं। अगर भारत तेजी से आर्थिक तरक्की करना चाहता है—जैसा कि जाहिर है कि वह करना चाहता है—तो इसके दो ही रास्ते है या तो यहाँ के रहनेवालो को बहुत तकलीफे उठानी पडेगी और बहुत बडी-बडी कुरबानियाँ देना पडेगी या फिर बहुत बडे पैमाने पर विदेशो से मदद लेनी पड़ेगी। यह तो जाहिर है कि विदेशो की इस मदद से सारे मसले तो हल नही हो जायेगे लेकिन उससे इतना जरूर होगा कि यहाँ के रहनेवालो पर तकलीफो और कुरबानियो का जो बोझ पडेगा वह कुछ हल्का जरूर लगने लगेगा। मौजूदा हालात मे यह भी ज़ाहिर है कि काफी बड़े पैमाने पर मदद सिर्फ अमरीका से ही मिल सकती है।

लेकिन, यह बात साफ है कि इस वक्त कुछ ऐसी बाते है जिनकी वजह से दोनो मुल्को के ताल्लुकात मे एक खिचाव-सा पैदा होता है। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि इस वक्त अमरीका और हिदुस्तान के ताल्लुकात मे दोनो तरफ से कुछ झुँझलाहट है और दो मुल्को के बीच जब भी इस तरह की झुँझलाहट होती है तो अकसर उसकी बुनियाद किसी गलतफहमी पर होती है।

मैं आपसे पहले ही से इतना लम्बा सवाल पूछने के लिए माफी माँग लूँ लेकिन इस मसले की अहमियत को देखते हुए मैं आपकी इजाजत से यह बताना चाहूँगा कि झुँझलाहट किन-किन बातो पर है और आपसे उनके बारे मे अपनी राय देने के लिए कहूँगा।

पहले हिदुस्तानियो की नजर से इस सवाल को देखिये।

हिंदुस्तानियो मे जो थोडी-सी झुँझलाहट पैदा होती है उसकी सबसे पहली वजह तो यह है कि उन्हे ऐसा लगता है कि जो बाते पुरानी साम्राजी ताकतो के फायदे की है उनमे अमरीका भी दिन-ब-दिन उन्ही ताकतो का ज्यादा साथ देने लगा है; अपने फौजी फायदे के लिए वह ऐसी सरकारो को सहारा देकर कायम रखता है जो जनता की नुमाइदगी नही करती, और पूरे तौर पर ऐसा लगता है कि वह नये एशिया की उमगो के खिलाफ है। अगर हम और आगे जाये तो इस झुँझलाहट की वजह यह भी है कि लोग कुछ-कुछ ऐसा समझने लगे है कि अब अमरीका एक ऐसी समुद्री ताकत बन गया है जिसकी लपेट मे हिदु-

स्तान जैसे बडे-बडे मुल्क भी आ गये हैं—यह अमरीका की दिलचस्पी प्रशात महासागर की तरफ पैदा हो जाने का लाजिमी नतीजा है।

फिर दूसरी बात यह कि कुछ हिदुस्तानी यह कहते है कि ऐसा लगता है कि अमरीका के नेता इस बात को बिल्कुल समझ ही नही सकते कि एशिया के नये-नये आजाद हुए मुल्को मे जो तटस्थ रहने की ख्वाहिश है वह इन मुल्को की आजाद रहने की ख्वाहिश का ही सबसे सही अक्स है।

तीसरे, हिदुस्तानियो का कहना यह है कि अमरीकी राजनीतिक शर्तें लगाकर ही आर्थिक मदद देना पसद करते है और कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि वह आर्थिक मदद के मुकाबले मे फौजी मदद देना ज्यादा पसद करते है।

आखिर मे, यह भी कहा जाता है कि जबकि इस मसले को सच्चे आर्थिक सुधारो से ही हल किया जा सकता है अमरीकी जरूरत से ज्यादा जोर फौजी धमकियो पर देते है।

जहाँ तक अमरीकियो का सवाल है मैं खुद अमरीकी नही हूँ लेकिन मै अपने अमरीकी दोस्तो से जो कुछ सुनता हूँ उसका खुलासा आपके सामने रखने की कोशिश कर रहा हूँ, और हमारे पश्चिमी मुल्को के कुछ रहनेवाले भी कमोबेश इसी तरह से सोचते है—तो हमारा यह अमरीकी दोस्त कहेगा कि हिदुस्तान "हमारे साथ नही है, इसलिए वह हमारे खिलाफ है" और इसलिए अमरीका एशिया के कम्युनिस्ट राज्यो के चारो तरफ एक फौजी घेरेबदी कर रहा है, उसमे एक जगह खाली रह जाती है और अमरीका समझता है कि इस घेरेबदी से ही कम्युनिस्टो को दूसरे मुल्को मे अपने पैर जमाने से रोका जा सकता है।

दूसरे, हमारा यह अमरीकी दोस्त कहेगा कि दुनिया के मौजूदा झगडो मे हिदुस्तान जो बीच-बचाव करने की कोशिश करता है उससे कम-से-कम अमरीकियो को तो ऐसा लगता है कि अमरीका का पलडा कमजोर होता है और कम्युनिस्टो के हाथ मजबूत होते है।

तीसरा सवाल वह यह उठा सकता है कि एक ऐसे इलाके मे जिसमे अमरीका की दिलचस्पी बडी तेजी से बहुत ज्यादा बढती जा रही है, हिंदुस्तान का भी कुछ नैतिक प्रभाव है जो अकसर उस इलाके मे अमरीका के मसूबो के खिलाफ

पडता है। अगर हम उसे ज्यादा ऊँची सतह पर देखे तो शायद यह दो ऐसे मुल्को का टकराव है जिन्हे अपने-अपने "लक्ष्य" के सही होने का बराबर यकीन है।

चौथे, यह अमरीकी यह भी कह सकता है कि हिदुस्तान मे जो "समाजवादी ढॉचा" अपनाया गया है वह अमरीका के निजी कारोबार के फायदे के खिलाफ है, यह उन पूंजीपतियो के हितो के खिलाफ है जो, अगर यह समाजवादी ढॉचे की रुकावट न होती, तो अपनी पूंजी हिदुस्तान मे लगाकर उसकी आर्थिक समस्याओ को हल करने मे मदद देते।

पॉचवे, वह यह कह सकता है कि हिदुस्तान अकसर अमरीका की तरफ ऐसा रवैया अख्तियार करता है जैसे अमरीका तो दुनिया की छोटी-मोटी माया-मोह की बातो के चक्कर मे पडे रहने की घटिया जिदगी की नुमाइदगी करता है और हिदुस्तान मायामोह से मुक्त आत्मा की शानदार मिसाल है।

और आखिरी बात यह आप मुझे माफ कीजियेगा मै बिल्कुल साफ-साफ कह रहा हूँ . मैने अकसर कुछ बहुत ही नेकदिल और नेकनीयत अमरीकियो को कहते सुना है कि "नेहरूजी हमे पसद नही करते"—शायद ये लोग नेकनीयत तो बहुत है लेकिन उनकी जानकारी इतनी ज्यादा नही है। . आप जानते है कि अमरीकी ऐसी बात का बहुत जल्दी बुरा मान जाते है। वे तो यहाँ तक कहते है कि "उन्हे पता नही चलता और वह कम्युनिस्टो के लिए रास्ता खोल देते है" क्योकि "आखिरकार उनकी हमदर्दी तो दूसरी तरफ ही है।"...

मै उम्मीद करता हूँ कि, प्रधान मत्रीजी, आप मुझे माफ करेगे कि मैने ये सब बाते इतने भोडे तरीके से आपके सामने रख दी है। मै दरअसल आपका ज्यादा वक्त लेना नही चाहता था .

नेहरू · हॉ, तो आपने तो मुझसे एकदम से इतने बहुत-से सवाल कर दिये है कि उनमे से कहॉ से शुरू किया जाये, समझ मे नही आता।

पहली बात तो यह है कि यह सोचना या कहना बिल्कुल गलत है कि हिदुस्तानी अमरीकियो को नापसद करते है। हिदुस्तान मे अमरीकियो के बारे मे इस किस्म का कोई ख्याल नही है। यह जरूर है कि अमरीका मे बहुत-सी बाते ऐसी है जो हमे अच्छी नही लगती, इस माने मे कि हम उन चीजो को यहॉ हिदुस्तान मे ले आने के लिए बेचैन नही है। जिदगी के सवालो की तरफ हमारा

दरअसल इस तरह तो आप अपने दुश्मन के हाथ मे खेलते है और आप ऐसी हालत पैदा कर देते है जिसमे यह मालूम होने लगता है कि कम्युनिज्म इन उपनिवेशो को आजाद करानेवाली ताकत है। यह बहुत खतरनाक बात है। आप सब लोगो को अपने खिलाफ कर लेते है। अगर आप चाहते है कि लोग आपके साथ आये तो आपको जनता के सामने एक आज़ाद करानेवाली ताकत की तरह आना चाहिये, आपके विचार और आपकी पालिसी आजादी के विचार और आजादी की पालिसी होनी चाहिये। अगर ऐसा नही है तो आप किसी मुल्क मे किसी गरोह को, किसी ताकतवर गरोह को, अपनी तरफ भले ही कर ले लेकिन जनता हमेशा आपके खिलाफ जायेगी। और आज एशिया मे—एशिया मे ही क्यो किसी भी जगह—फुटकर गरोहो को अपने साथ मिलाने के मुकाबले मे जनता को अपने साथ रखना कही ज्यादा जरूरी है।

फिर, यह मदद का सवाल है। मैने उस दिन आपको अपनी दुविधा के बारे मे बताया था। हम मदद यकीनन चाहते है। लेकिन एक अजीब बात है, हम बहुत ज्यादा मदद नही चाहते। कहने का मतलब यह कि हम अपनी जनता के दिल मे यह बात नही पैदा होने देना चाहते कि कोई दूसरा आकर हिंदुस्तान को उसकी तरफ से बना देगा। मै समझता हूँ कि सोचने का यह तरीका गलत है और इससे उन्हे सही किस्म की ट्रेनिंग नही मिलती। उन्हे अपने मुल्क को खुद बनाना है। अगर हम आजादी के लिए लडे न होते, अगर आजादी जबरदस्ती हमारे मत्थे मढ दी गयी होती तो हम एक कमजोर कौम होते। लेकिन राजनीतिक एतबार से हम अपने-आपको कमजोर नही समझते, क्योकि हमने अपने बल-बूते पर कुछ हासिल किया है। इसलिए हम अपनी आर्थिक तरक्की भी बहुत-कुछ अपनी कोशिशो से ही हासिल करेगे।

मदद का हम स्वागत करते है, लेकिन एक हद के अदर। सिर्फ इसीलिए नही कि अगर यह मदद बहुत ज्यादा मिलने लगे तो उससे भारत का आर्थिक सतुलन बिगड जाने का खतरा है बल्कि इसलिए भी कि इससे लोगो के दिमाग मे सोचने का एक गलत तरीका पैदा होता है जिसका जिक्र मै अभी कर चुका हूँ। लेकिन खाली हिंदुस्तान की बात छोड दीजिये, आमतौर पर भी जाहिर है कि यह बहुत अच्छी बात है कि दुनिया मे जिन मुल्को के पास बहुत धन-दौलत और

दूसरी चीजे और सामान है वह पिछडे हुए इलाको को तरक्की करने के लिए मदद दे। अगर तग से तग नजर से भी देखा जाये तब भी यह बात की जानी चाहिये और इस वक्त फौजी कामो पर जो बहुत बडी-बडी रकमे खर्च की जाती है उनमे से अगर कुछ पैसा इधर लगा दिया जाये तो यह काम बडी आसानी से हो सकता है।

तो यह तरीका, जिसे मै दुनिया के सवालो को फौजी ढग से देखने का तरीका कहता हूँ, हमे बहुत गलत मालूम होता है। यह तरीका उन सवालो के एतबार से भी गलत है जिन्हे इस तरीके से हल करने की कोशिश की जाती है। आखिर मे चलकर जो लडाई होती है उसे छोड भी दीजिये तब भी यह जो फौजी तरीका होता है सवालो को देखने का, उसमे लडाई की धमकी हमेशा छुपी होती है। हम ताकतवर है, तुम ऐसा करो नही तो मुसीबत मे फँस जाओगे।.. अब वह जमाना गुजर गया जब ऐसी धमकियो का बहुत ज़्यादा असर होता था। अब इनका ज्यादा असर नही होता। और जब दूसरी तरफ से भी ऐसी ही धमकी दी जाती है तब तो असर बिल्कुल ही नही होता। लेकिन उन मुल्को को भी जो बहुत ताकतवर नही है, उन्हे अपनी जनता को जवाब देना पडता है। आप हुकूमत करनेवाले गुट को तो धमका सकते है लेकिन पूरी जनता को तो नही धमका सकते। उसके ऊपर बिल्कुल उल्टा असर होता है। और जहाँ कही जम्हूरियत के, लोकतत्र के बीज भी होते है वहाँ इस धमकी का असर उससे बिल्कुल उल्टा होता है जो कि धमकी देनेवाला चाहता है। लोगो को गुस्सा आ जाता है और वह पहले से भी ज्यादा अकड जाते है। तो जहाँ तक सोचने के इस फौजी तरीके का सवाल है कि यहाँ अड्डे हो, वहाँ अड्डे हो, हर जगह अड्डे हो, तो सिपाहियो की नजर से देखते हुए लडाई के जमाने मे तो मुमकिन है उससे कुछ मदद मिल सकती है। लेकिन इससे इन अड्डो के चारो तरफ ऐसी फजा पैदा हो जाती है जो फायदेमद होती है। इस बात को हमेशा से माना गया है कि लड़ाई मे भी खाली फौजी ढग से सोचने का तरीका काफी नही होता। दिमागी लडाई होती है, लोगो के दिमागो को बदलने के लिए तरह-तरह की बाते की जाती है। तो मेरे ख्याल मे सबसे बडी दिक्कत यह है कि चाहे अमरीका हो या सोवियत यूनियन, दोनो ही, हमारी राय मे, अपनी

अगर किसी नदी पर बाँध बनाया जाता है तो वह बाँध होता है, वह कोई कम्युनिस्ट बाँध तो होता नही। नदी घाटी योजना चाहे चीन मे हो या भारत मे, वह नदी घाटी योजना ही होती है, जैसे अमरीका मे तेन्नेसी वैली योजना है।

तो, अगर आप मुझसे पूछे, तो हम ईमानदारी के साथ अपनी पसद और नापसद को हद के भीतर रखने की कोशिश करते है। हम दुनिया के किसी मुल्क को सख्त नापसद नही करते और नफरत तो खैर हमे किसी से है ही नही। हम इस बात की कोशिश करते है कि हम दूसरे मुल्को को पसद करे, खासतौर पर अमरीका जैसे बडे मुल्को को।

मै समझता हूँ कि अमरीका के लोगो में बहुत-सी ऐसी बाते है जो तारीफ के काबिल है। लेकिन अमरीका की जो जिदगी है उसकी बहुत-सी बातो मे मुझे कोई दिलचस्पी नही है। मिसाल के तौर पर, मुझे इस बात मे कोई दिलचस्पी नही है कि हिदुस्तान मे हर आदमी के पास एक मोटर, कपडे धोने की मशीन या रेफ्रीजरेटर हो। यह बात मेरे दिमाग मे कभी आती ही नही। यह बात नही है कि मै आराम से जिदगी बिताने के खिलाफ हूँ, लेकिन मेरा ख्याल है कि बहुत ज्यादा आराम की जिदगी भी अच्छी नही होती।

मॉड प्रधान मत्रीजी, अतर्राष्ट्रीय सवालो के बारे मे आपके जो दार्शनिक विचार है उनमे से बहुत-सी बातो पर हम गौर कर चुके है। फिर भी कुछ लोग यह कह सकते है कि हम फलाँ बात को मानते है, फलाँ बात को मानते है, लेकिन इन सब बातो से नतीजा क्या निकलता है?

मै इन तमाम बातो को एक सवाल की शक्ल मे पेश करने की कोशिश करूँगा। मेरा मतलब यह है कि मै यह पता लगाने की कोशिश करूँगा कि आजकल दुनिया की जो हालत है उसमे आपके इन विचारो के पीछे कौन-से दार्शनिक विचार, कौन-सा फलसफा काम करता है। क्या इन तमाम बातो का निचोड इस तरह रखना ठीक होगा

दिन-ब-दिन ऐसे मुल्को की तादाद बढती जा रही है जो इस बात को समझते है कि उनके पास ऐटमी लडाई करने का सामान नही है और वह ऐसी लडाई की तबाहियो का शिकार भी नही बनना चाहते। इसलिए, ये मुल्क खुले आम या अपने दिल में अपने-आपको उन बडी ताकतो मे से किसी का भी साथ देने

को तैयार नही समझते जो इस नये किस्म की लडाई छेड़ने की बाते सोचती है। लडाई के बजाय सुलह-समझौते पर भरोसा करने के इस बढते हुए रवैये की वजह से आखिर मे चलकर सिर्फ 'क' और 'ख', और शायद 'ग' भी, ऐसी ताकते रह जायेगी जो हथियार जमा करेगी, एक दूसरे को धमकायेगी और ऐटमी लडाई से अपने झगडे तै करने के मसूबे बनायेगी। लेकिन जब 'क', 'ख' और 'ग' भी यह देखेगे कि उनका कोई ऐसा साथी नही रह गया जिस पर वह भरोसा कर सके और इस बात को समझने लगेगे कि लडाई मे बहुत बडा खतरा होता है तो मुमकिन है वे खुद आपस मे बातचीत करके अपने हथियारो को घटाने की कोशिश करे। और इस तरह मुमकिन है आखिर मे चलकर धीरे-धीरे वह चीजे मिट जाये जिन्हे हम आज "गुट" या फौजी गरोहबदियाँ कहते है।

मैंने ऊपर जिन लफ्जो मे आपके विचार रखे है क्या वह सही है?

नेहरू मेरे ख्याल से सही तो है।.

मैं नही समझता कि आनेवाले जमाने के बारे मे बात करना पेशेवर फिला-सफरो के अलावा और किसी का काम है। मैं पेशेवर फिलासफर तो हूँ नही। मेरा यह दावा बिल्कुल नही है। मैं तो आगे के लिए एक मज़िल तै करके उसके हिसाब से सिर्फ आज की समस्याओ मे दिलचस्पी रखता हूँ। मुझे तो बस इसमे दिलचस्पी रहती है कि मुझे अगला कदम क्या उठाना है, मुझे किसी सवाल को किस तरह से तै करना है और साथ ही हमेशा मैं इस बात के बारे मे भी सोचता रहता हूँ कि उसका असर दूसरी बातो पर क्या पडेगा। हर अमली आदमी को, हर राजनीतिज्ञ को अकसर दो ऐसे रास्तो मे से कोई रास्ता चुनना पडता है जो दोनो ही उसे नापसद होते है। वह उनमे से जो कम बुरा रास्ता होता है उसे पसद करने की कोशिश करता है। इन सब बातो का कुछ-न-कुछ असर तो पडता ही है।

लेकिन मौजूदा हालात को देखते हुए, मुझे ऐसा लगता है कि आपने अभी जो कुछ कहा है वह भी भविष्य के बारे मे सोचने का एक मुमकिन तरीका हो सकता है। इसी बात को जरा दूसरे ढग से हम इस तरह कह सकते है कि अगर लोगो के दिल मे यह बात बिल्कुल बैठ जाये कि लडाई से बचना चाहिये, तो इसका लाज़िमी नतीजा यह होगा कि उन्हे इस बात का भी पक्का यकीन हो जायेगा कि

हमे ऐसी वातो को भी मान लेना चाहिये जो हमे नापसद हो, हमे उन्हे वर्दाश्त करना चाहिये वशर्ते कि उन वातो से हमारे किसी मामले मे दखल न पडता हो। दूसरे लफ्जो मे, हम कुछ-कुछ उन्ही उसूलो पर पहुँच जाते है जिन्हे हम पचशील कहते है एक-दूसरे के मामले मे दखल न देना, हर मुल्क को जिदगी के अपने ढर्रे पर चलने देना। ये दोनो वाते इसलिए नही कि यही सही वाते है, वल्कि इस-लिए भी कि कोई दूसरा रास्ता अख्तियार करने का मतलव होगा मुसीवत मे फँस जाना। अगर हम दुनिया मे ज्यादा शाति की फजा पैदा कर दे, अगर तनातनी दूर हो जाये तो मेरे ख्याल से दुनिया के सवालो को हल करना ज्यादा आसान हो जाये। यह तो जाहिर वात है कि हम सव सवालो को कभी हल नही कर सकते क्योकि जव हम एक सवाल को हल कर लेते है तो दूसरा उससे भी टेढा सवाल उसकी जगह पर हमारे सामने आकर खडा हो जाता है। समस्याएँ और मसले तो जिदगी के साथ लगे हुए है। सिर्फ मुर्दो के सामने कोई मसले नही होते।

मॉड . प्रधान मत्रीजी, माफ कीजियेगा, इन तमाम उम्मीदो में उन्नीसवी शताब्दी के उदारवादी आदर्शो की साफ झलक दिखायी देती है।

उन आदर्शों की वुनियाद तीन खास वातो पर थी पहली तो यह यकीन कि इसान की तरक्की लाजिमी है, दूसरी, यह यकीन कि इसान ऐसा हो सकता है कि उसमे कोई खरावी न रह जाये, और तीसरी, यह यकीन कि इसान के आपस के ताल्लुकात में धीरे-धीरे लडाई-झगडो का फैसला जोर और ताकत के वल पर नही वल्कि सुलह-समझौते से होने लगेगा।

लेकिन इन पिछले पचास वरसो में इस सिलसिले मे वहुत धक्का पहुँचा है, इन आदर्शों से हम निराश हुए है और इन पर से हमारा विश्वास उठ गया है। इस वीच मे हमने दो वडी लडाइयाँ देखी, हिटलर का जुल्म देखा जिसमे लाखो लोग ज़िदा गैस की भट्ठियो मे जला दिये गये, हमने यह भी देखा कि इसान की शानदार ईजादो को किस तरह तवाही के लिए इस्तेमाल किया गया। राजनीति मे हमने देखा है कि जो ताकते इस वात पर यकीन करने से इकार करती थी कि यह भी मुमकिन है कि इसान के आपस के ताल्लुकात मे जोर-जवर्दस्ती का विल्कुल नाम-निशान न रह जाये वह वहुत मजवूत हुई है—दाये वाजू की ताकतें भी और वाये वाजू की भी। समझदारी का वीच का

रास्ता इन दोनो के बीच मे कुचलकर रह गया है। इसके अलावा, साइंस और मशीनो की तरक्की की वजह से हमारा समाज गठे हुए गुटो की तरफ जा रहा है जिनमे फैसला ज्यादा-से-ज्यादा हद तक कुछ इने-गिने सगठनो या लोगों के हाथ मे होता है।

इन सब बातो को देखते हुए एक ऐसे राजनीतिज्ञ के दिमाग मे, जो उदारवादी मानवप्रेमी भी हो—जैसे कि आप है—एक बुद्धिवादी की इस उम्मीद की जगह कौन-सी चीज ले सकती है कि इसान अपने-आप तरक्की करता रह सकता है? इस उदारवादी मानवप्रेमी का नया आदर्श क्या हो सकता है, और अपनी उन्नीसवी शताब्दी की परम्पराओ मे से वह किन चीजो को अब भी रख सकता है।

नेहरू हाँ, तो पहली बात तो यह कि मै उन्नीसवी शताब्दी मे पैदा हुआ था इसलिए शायद मुझमे कुछ बाते उन्नीसवी शताब्दी की है।

जिसे आप उन्नीसवी शताब्दी का उदारवाद कहते है, तो यह तो सच है कि यह यकीन तो बहुत बडी हद तक चकनाचूर हो गया है कि इसान की तरक्की लाजिमी है—और मुझे खुद भी इसका यकीन नही रह गया है। फिर भी मै यह जरूर कह सकता हूँ—हालाँकि मै इसकी कोई वजह नही बता सकता—कि मेरे दिमाग के किसी कोने मे अब भी यह यकीन छुपा हुआ है कि इसान मे कोई ऐसी बात है, उसमे कोई ऐसी ताकत है, जिसकी वजह से हम जिदा रहते है। तमाम मुश्किलो के होते हुए भी मै ऐसा समझता हूँ। और अगर इसान जिदा रहता है तो हर कदम पर उसकी सतह ऊँची होती जायेगी। लेकिन यह तो यो ही मेरा ख्याल है। मुमकिन है ऐसा न भी हो। तो मै उसके बारे मे क्या कर सकता हूँ? वह तो फिर एक इल्मी बहस हो जाती है, बस आदमी यही कर सकता है कि वह ऐसे मकसदो के लिए काम करे जिनसे ज्यादा बडे-बडे खतरे दूर हो जाये।

मैं सिर्फ लडाई का ही नही बल्कि दूसरे खतरो का भी जिक्र कर रहा हूँ, जैसे नफरत, वैर-दुश्मनी, झगडा। मै तो समझता हूँ कि ये बाते शायद तोप-बदूको की लडाई से भी ज्यादा खतरनाक है। इसलिए खतरनाक है कि ये बाते इसान को गिरा देती है, इन बातो की वजह से हमारी उम्मीदे मुरझा जाती

हैं, हम तगनजर हो जाते हैं, और बहुत-सी ऐसी बाते है। बुनियादी तौर पर मैं यह समझता हूँ कि जिस तरह साइस मे हर काम का एक असर होता है उसी तरह इसान के रिश्तो मे भी—चाहे वह कौमी रिश्ते हो या अतर्राष्ट्रीय रिश्ते हो—हम जो भी काम करते है, हम जो भी बात सोचते हैं, उसका एक असर होता है। मुमकिन है वह असर बहुत थोडा होता हो। लेकिन अगर वह काम या वह ख्याल बुरा हो तो हमारी नीयत कुछ भी हो, उसका असर बुरा होगा।

बदकिस्मती से लडाई, लडाई का डर और लडाई की तैयारी आदमी को सोलहो आने बुरे ढग से सोचने पर मजबूर कर देती है, जिसमे नफरत होती है, एक कडवापन होता है, गुस्सा होता है और इसान तबाही की बाते सोचने लगता है जिससे दूसरे के मुकाबले मे ऐसी बाते सोचनेवाले को ही ज्यादा नुकसान होता है। तो हमारे सामने सवाल यह है कि इन सब बातो को कैसे कम किया जाये, और फिर दुनिया को किस तरह आगे ले जाया जाये, उसे अपनी मर्जी के मुताबिक तरक्की करने का मौका किस तरह दिया जाये।

तिबोर मॉड आजकल भारत मे इधर-उधर घूमते वक्त ऐसा लगता है कि हम एक ऐसे रगमच पर तैयार की गयी सीनरी के बीच घूम रहे है जहॉ कोई बहुत बडा नाटक खेला जानेवाला है। कोई यकीन के साथ तो नही बता सकता कि इस नाटक का अत क्या होगा इसका अत दु खान्त होगा, या पुराने नाटको की तरह सबके दिन हँसी-खुशी बीतने लगेगे, या वैसा ही कोई समझौता हो जायेगा जैसा कि इसान की ज्यादातर कोशिशो के आखिर मे हो जाता है।

प्रधान मत्रीजी, जैसा कि आप कई बार कह चुके है, हिदुस्तान मे ये लाजिमी तब्दीलियॉ ससदीय लोकतत्र या पार्लियामेटरी डेमाक्रेसी के कानूनो के मुताबिक होगी। कहने का मतलब यह कि यहॉ एक, "वैधानिक क्राति" होगी। विदेश से आनेवालो के सामने इस बात से एक बुनियादी सवाल खडा हो जाता है:

जब कोई विधान या कानून बनाया जाता है तो या तो वह समाज की तब्दीली की उमग खत्म हो जाने के बाद बनता है या फिर समाज की कोई जरूरत पैदा होने से पहले ही उसके बारे मे कानून बना दिया जाता है। अगर हम इसे इस तरह कहे तो यह सवाल ज्यादा साफ हो जायेगा कि क्या भारत का समाज, जो खासतौर पर हिदू समाज है, उन वैधानिक या कानूनी तब्दी-लियो के लिए तैयार है जो धर्म-निरपेक्ष भारत उस पर थोपना चाहता है।

जवाहरलाल नेहरू · आदमी जब भी कोई काम करना चाहता है तो उसकी हमेशा कुछ हदे होती है। उस काम के लिए जितनी उमग होती है और लोग जिस हद तक उसे मानने को तैयार होते है उसके बीच किसी-न-किसी सतह पर समझौता करना पडता है। समझौता खुद कोई बुरी चीज़ नही होती—बशर्ते वह हमे ठीक रास्ते पर आगे ले जाता हो। मतलब यह कि

मुमकिन है कि हम कोई बात फ़ौरन न कर सकें लेकिन हम अगर उस तरफ़ बढ़ रहे हों तो ठीक है।

जब आप जम्हूरियत या लोकतंत्र में वैधानिक परिवर्तनों या क़ानूनी तब्दीलियों की बात करते हैं तो आप इस बात को मानकर चलते हैं कि लोगों को उस सतह तक ऊँचा उठाया जा चुका है और अगर उस सतह तक नहीं तो कम-से-कम उसके क़रीब तो पहुँचा ही दिया गया है। कहने का मतलब यह कि अगर पार्लियामेंट में जनता के नुमाइंदे किसी क़ानून को मंजूर कर लेते हैं तो ज्यादातर लोग भी उसे मंजूर कर लेंगे—या कम-से-कम उसे जोश के साथ या बिना जोश के मानने को तैयार जरूर होंगे। अगर सही-सही हिसाब लगाया जाये तो मुमकिन है ऐसे लोगों की तादाद जरूरी नहीं है कि आधे से ज्यादा हो। लेकिन लोगों की जो आदत पड़ी होती है उसे छुड़ाना बहुत मुश्किल होता है और उन्हें एक खास सतह तक लाना जरूरी होता है। मतलब यह कि यह बहुत जरूरी होता है कि बहुत बड़ी हद तक लोग सरकार और पार्लियामेंट के साथ हों। लोगों को सरकार की ईमानदारी पर भरोसा होना चाहिये। एक बार यह हो जाये तो समझना चाहिये कि हम ठीक तरफ जा रहे हैं।

यह तो कोई नहीं बता सकता कि किसी ऐसी पुरानी आदत को जिसे हम बुरा समझते हों हम कितनी जल्दी बदल सकते हैं। लेकिन अगर हम किसी तरफ बढ़ना शुरू करें तो रफ्तार धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। किसी क़ानून का आदी हो जाने के अलावा खुद समाज का ढाँचा भी बदलता रहता है। बड़े-बड़े कारखाने खुलते हैं और दूसरी तब्दीलियाँ होती हैं। लोग मिलकर काम करते हैं और यह बात खुद लोगों के किसानों की तरह सोचने के पुराने ढंग की जड़ें हिला देती हैं सोचने का वह तरीका जो एक-दूसरे से दूर बसे हुए अलग-अलग गाँवों के रहनेवालों का सोचने का तरीका होता है। ये सब बातें हो रही हैं। लेकिन सब बातों को साथ मिलाकर देखना चाहिये। आखिर में तो चलकर जो कुछ होगा वह इन सब अलग-अलग ताक़तों का नतीजा होगा।

मॉंड . चीन के चिन खानदान के पहले बादशाह के जमाने से लेकर—जिसने पुरानी परम्पराओं से बिल्कुल रिश्ता तोड़ लेने के लिए हर लिखी हुई चीज़ को जला देने का हुक्म दे दिया था—कमाल अतातुर्क के जमाने तक

"वैधानिक क्राति" की जितनी भी कोशिशे हुई उन सब मे कुछ हद तक ही कामयाबी मिली है। वे परम्पराओ, रीति-रिवाजो और लीक पर कायम रहने के सदियो के बोझ को पूरी तरह नही बदल सकी। बहरहाल थोडे वक्त मे तो नही बदल सकी। भारत के सविधान मे जो मूल अधिकार और निर्देशक तत्त्व दर्ज कर दिये गये है वे समाज के बारे मे हिदुओ के ख्यालात के बिल्कुल खिलाफ है। असल बात तो यह है उस पुराने ढर्रे की रुहानी और दुनियवी दोनो ही बातो के हामी इन तब्दीलियो को आसानी से लागू नही होने देगे।

मै सिर्फ एक मिसाल दूंगा। अभी कुछ दिन पहले हिदुस्तान के एक मशहूर नेता ने एक भाषण दिया था जिसमे उन्होने बहुत बडे पैमाने पर फैले हुए इस विचार पर कि "गॉव वापस चलो" या गरीबी को एक आदर्श बना लेने के खिलाफ जबर्दस्त हमला किया था और यहॉ तक कहा था कि "हिदुस्तान का बाकी दुनिया से ज्यादा रुहानी होने का दावा करना अपने-आपको धोखा देने के अलावा और कुछ नही है।"[1] इसके अलावा दक्षिणी भारत के एक बहुत मशहूर अखबार मे—जिसके बारे मे मुझे बताया गया है कि वह हिदुओ के इसी ख़्याल का प्रचार करता है—एक सम्पादकीय लेख छपा था जिसमे एक जुमला बहुत ही गौर करने लायक था। उसमे "अधाधुध सास्कृतिक असर कबूल करने" के खिलाफ हमला किया गया था और आगे चलकर कहा गया था कि "इसका सिर्फ यह नतीजा होगा कि जनता, जिसकी जडे अपनी जीती-जागती परम्पराओ मे मजबूती के साथ जमी हुई है, और पढे-लिखे लोगो के उस हिस्से का फर्क बढता जायेगा, जो अपनी बुनियाद से अलग हो चुका है।"[2]

मै यह नही कहता कि लोगो मे तब्दीली की ख़्वाहिश बहुत बडे पैमाने पर मौजूद नही है। लेकिन सविधान मे हिदू सस्थाओ को धर्म-निरपेक्ष राज्य के आदर्शो के रास्ते पर ले आने का जो मकसद सामने रखा गया है क्या वह

---

१. यह बात २४ दिसम्बर १९५५ को श्री के० एम० पनिक्कर ने अपने एक भाषण में कही थी।

२. यह मद्रास के दैनिक 'दि हिंदू' के २ जनवरी १९५६ के एक सम्पादकीय लेख में कहा गया था।

आगे बढ़ते हुए भारत की आर्थिक योजनाओं के साथ चल सकेगा? या कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि उसका जो विरोध किया जायेगा उसकी वजह से तब्दीली इतनी धीमी हो कि वह हिंदुस्तान की आर्थिक योजनाओं के रास्ते में रुकावट बन जाये क्योंकि इन आर्थिक योजनाओं का कार्यक्रम बहुत तेज रखा गया है?

नेहरू : कुदरती बात है कि हिंदुस्तान में सभी तरह के लोग हैं खास-तौर पर पढ़े-लिखे लोगों में। उनमें ऐसे दक़ियानूसी लोग हैं जो कोई तब्दीली चाहते ही नहीं। फिर ऐसे लोग हैं जो बहुत तेजी से बढ़ना चाहते हैं। लेकिन मेरी राय में हिंदू समाज के बारे में यह सोचना बिल्कुल सही नहीं है कि वह बहुत दक़ियानूसी समाज है कि वह समाज तब्दीलियों के खिलाफ है।

पुराने जमाने में तब्दीलियाँ क़ानून के जरिये नहीं बल्कि रीति-रिवाज बदलने की वजह से होती थीं: लोग खुद बदल जाते थे। दरअसल, अंग्रेजों के आने से पहले हिंदुओं का पूरा क़ानून कोई बाक़ायदा लिखा हुआ कानून नहीं था। कुछ पुरानी किताबों में ये कानून दर्ज जरूर थे। लेकिन हर क़ानून बदल सकता था और दरअसल आज तक हालत यह है कि आप रीति-रिवाजों की बिना पर अदालत में किसी भी क़ानून की मुख़ालफ़त कर सकते हैं। रीति-रिवाज बदलते रहे हैं। अंग्रेजों के जमाने में जाकर इन सब क़ानूनों को बाक़ायदा लिखा गया और इन क़ानूनों में हेरफेर करनेवाली ताक़त की हैसियत से रीति-रिवाजों का हाथ बहुत कम रह गया।

करते थे। और उनका जो असर था और हमारे सगठन का जो असर था उसकी आम लोगो के दिमागो पर और उनकी जिदगी पर वहुत गहरी छाप पड़ी।

इन दोनो ताकतो का साथ काम करना वहुत ज़रूरी है· एक तो कानून का असर और दूसरा लोगो को इन तव्दीलियो को मानने के लिए राजी करने के लिए जाकर सीधे उनसे मिलने का असर। मैं समझता हूँ कि ये तव्दीलियाँ हिंदुस्तान मे लायी जा सकती है। जहाँ तक सिर्फ आर्थिक वातो का सवाल है तो उनमे तो दरअसल कोई वुनियादी रुकावट है ही नही। समाजी वातो के सिलसिले मे कुछ ज्यादा मुखालफत है। लेकिन मैं समझता हूँ कि यह रुकावट भी वहुत ज्यादा नही है। फिर इसके साथ ही यह वात भी है कि हम इन तव्दी-लियो को कुछ थोडे-से लोगो की नज़र से देखते है . जिन्हे हम ऊँची जातवाले कह सकते है। लेकिन आम लोग इस नजर से नही देखते।

शादी और तलाक का सवाल ले लीजिये। सच पूछिये तो हमने इन्हे भी वदल दिया है। फिर भी लोग इस वात को नही समझते कि कुछ ऊँची जातो को छोडकर ज्यादातर हिंदुओ मे हमेशा से तलाक का दस्तूर रहा है। इसलिए एक वार जहाँ आपने आम जनता को हिला दिया तो वह उन तव्दीलियो के खिलाफ नही रह जाती। कुछ चुने हुए पढे-लिखे लोग ही, जिनका सोचने का तरीका ही दकियानूसी होता है, उनके खिलाफ हो सकते हैं। और इन चुने हुए पढे-लिखे लोगो मे भी दो किस्म के लोग होते है, एक तो वह जो आगे वढना चाहते है और दूसरे वह जो तव्दीली की राह मे रुकावट डालते है।

कुल मिलाकर देखा जाये तो मैं समझता हूँ कि तव्दीली चाहनेवाली ताकते वहुत काफी है और वह किसी भी वडी आर्थिक उन्नति के रास्ते मे रुकावट नही वनेगी।

मॉड : अव मैं अपने सवालो का रुख सीधे-सीधे आर्थिक वातो की तरफ मोडना चाहूँगा। पचवर्षीय योजना का विचार ही, जैसा कि इसके नाम से जाहिर है, आर्थिक तरक्की मे एक खास रफ्तार पैदा कर देना है, जैसे सगीत मे सुर-ताल होते है। इस तरक्की के लिए जो रफ्तार हम तै करे उसे परम्पराओ, धर्म या समाज की तरफ से होनेवाली मुखालफत के अलावा

रुपये-पैसे की और सामान की कमी की वजह से भी रुकावट पड सकती है। प्रधान मन्त्रीजी, आपने बार-बार कहा हैं कि आप चाहते है कि हिंदुस्तान बाहर की मदद पर दिन-ब-दिन कम भरोसा रखे और अपनी कोशिशो पर दिन-ब-दिन ज्यादा भरोसा रखना सीखे। लेकिन फिर भी हम हकीकत से बच नही सकते और दूसरी पचवर्षीय योजना मे काफी सोच-विचार के बाद कतर-ब्योत कर देने के बाद भी अभी बहुत बडी रकम की कमी है जो कही से जुटाना है। अगर यह रकम बाहर की मदद से नही मिलेगी तो उसकी कमी को तगी और कुरबानी से और पैदावार बढाने के लिए लोगो पर सख्त कानून लागू करके पूरा करना होगा।

मैं समझता हूँ कि इससे एक बुनियादी सवाल पैदा होता है और वह यह कि क्या लोकतात्रिक ढाँचा योजना के आर्थिक मुसूबो के मुताबिक काम करेगा या लोकतात्रिक परम्पराओ को बनाये रखने के लिए योजना मे ही कतर-ब्योत की जायेगी।

नेहरू अगर लोकतात्रिक ढाँचे को किसी दूसरी चीज के ताबे कर दिया जाये तो इसका मतलब दरअसल यह होता है कि उसे उस हद तक छोड दिया गया है। इस लोकतात्रिक ढाँचे को छोड देना न तो मै मुमकिन समझता हूँ और न वह मुनासिब ही है।

मैं समझता हूँ कि इस ढाँचे के भीतर रहकर ही हम बहुत-कुछ कर सकते है। यह हो सकता है कि कभी किसी काम मे कुछ देर हो जाये। तो इस देर-सबेर को तो हमे बर्दाश्त करना पडेगा। दूसरी तरफ, मौजूदा आर्थिक हालत की वजह से लोगो मे चीज़ो को बदलने की एक जबर्दस्त उमग है। यह उमग कुछ लोगो के दिमाग मे नही बल्कि आम जनता मे है। इस तरह लोक-तात्रिक मशीन पर जनता की आगे बढने की इस उमग का दबाव पडता रहता है। किसानो के सिलसिले मे हमने जो सुधार किये थे उनमे जो रुकावट पडी वह इस लोकतात्रिक ढाँचे की वजह से, यानी पार्लियामेट की वजह से नही बल्कि अदालतो की वजह से पडी, क्योकि अदालतो के काम मे कोई दूसरा दखल नही दे सकता। इसलिए इस दिक्कत को दूर करने के लिए हमे अपना सविधान बदलने मे कुछ वक्त लग गया। लेकिन हमने सविधान को बदला।

एक नया यकीन पैदा हो रहा है। पार्लियामेंट का आम रुख लोगो मे इन रवैयो को ज्यादा-से-ज्यादा बढाने का है।

यह तो सच है कि शहर के लोगो और गॉव के लोगो के अपने-अपने मतलब की जो बाते है उनमे कुछ टकराव है। सो यह बात तो इतिहास मे हमेशा से रही है। लेकिन जैसे-जैसे देहातो की तरक्की होती है और कारखाने फैलते जाते है वैसे-वैसे यह टक्कर भी कम होती जाती है। इसीलिए हम बहुत बडी हद तक इस बात के हक मे है कि किसी चीज को एक ही जगह जमा कर देने के बजाय उसे ज्यादा-से-ज्यादा बडे इलाके मे फैला दिया जाये। मेरा मतलब यह हर्गिज नही है कि जिन चीजो को एक जगह पर रखना ही जरूरी है उन्हे भी फैला दिया जाये, मै यह नही कहता कि इस फैलाव के चक्कर में हम काम करने के बेहतर तरीको को या बेहतर मशीनो को छोड दे। लेकिन हम चीजो को बडे-से-बडे इलाके मे फैला देने मे यकीन रखते है, हम चाहते है कि ग्राम-उद्योग बढे, हम चाहते है कि शहरो मे जो भारी कल-कारखाने बनते है उनके वजन पर गॉवो मे कुटीर-उद्योग कायम हो।

मॉड . इस बात को देखते हुए कि हिंदू समाज की कुछ परम्पराओ का, जैसे छूत-छात का, गाँव के आर्थिक ढॉचे से बहुत गहरा सबध है, क्या इस बात का खतरा नही है कि कुटीर-उद्योगो के बढने से आखिर मे यही पुराना ढॉचा मजबूत हो और इससे समाज मे जो बुराइयाँ पैदा होती है उनकी जड़े मजबूत हो ?

नेहरू · नही, बात बिल्कुल इसकी उलटी है। जिस तरक्की का भी असर गाँव पर पडता है उससे यह पुराना ढाँचा और उसके साथ ही छूत-छात जैसी चीजे खत्म होती है।

दरअसल छूत-छात की जड तो इस वक्त भी कट चुकी है। कुछ इलाको में लोग अब भी छूत-छात बरतते है लेकिन आमतौर पर लोग इसके खिलाफ है। फिर आर्थिक हालत की वजह से, जिंदगी के नये तौर-तरीको की वजह से और हमारे प्रचार, हमारे काम और हमारे कानूनो की वजह से अब उसमें कोई दम बाकी नही रह गया है। वह मिट चुकी है।

मॉड मै अब एक ऐसा सवाल पूछना चाहता हूँ जिसमे हिंदुस्तान में और

हिंदुस्तान के बाहर देखी गयी कुछ बातो का जिक्र किया जायेगा। ..मैं यह सवाल एतराज करने के लिए नही बल्कि हिंदुस्तान को देखकर मेरे मन मे जो बाते उठी है उन्हे समझने के लिए पूछ रहा हूँ। लोगो मे एक ख्याल यह बढता जा रहा है कि हिंदुस्तान बहुत-से काम करना चाहता है और उन्हे बहुत जल्दी करना चाहता है, और उसकी यह उमग बिल्कुल समझ मे आती है, लेकिन इस कोशिश मे उसकी ताकत कई तरफ बिखर जाती है। मतलब यह कि उसकी कोशिशे कुछ बुनियादी बातो को पूरा करने के बजाय बहुत से कामो मे बिखर जाती है। अपनी बात को ज्यादा साफ तौर पर समझाने के लिए मैं तीन मिसाले दूंगा। मैं ये तीन मिसाले तीन बिल्कुल ही अलग-अलग बातो के बारे मे इसलिए दे रहा हूँ ताकि यह बात साफ हो जाये कि इस एक ही सवाल के कितने पहलू है।

पहले शिक्षा को ले लीजिये। मिसाल के तौर पर अगर सोवियत यूनियन जैसा मुल्क इतनी तेजी से एक बडी ताकत बन गया है तो इसकी बहुत बडी वजह यह है कि बहुत शुरू से ही उन्होने शिक्षा का इतना जबर्दस्त इतजाम कर लिया था कि वह बहुत बडी तादाद मे टेकनीशियन तैयार करते रहे जैसे इस काम के लिए उन्होने बहुत बडी मशीन लगा दी हो। मैं जानता हूँ कि इस वक्त हिंदुस्तान मे शिक्षा-प्रणाली को सुधारने के बारे मे बहस हो रही है और मुमकिन है कि उसका रुख व्यावसायिक शिक्षा की तरफ मोड दिया जाये। लेकिन अभी तक इस सिलसिले मे कोई बुनियादी कदम नही उठाया गया है।

दूसरी मिसाल इससे बिल्कुल ही अलग मिसाल है, वह है मोटरे बनाने के बारे मे। इस वक्त पालिसी यह है कि विदेशी मोटरो के पुर्जे मँगवाकर यहा जोडने के कारखाने बनवाये जाये और फिर धीरे-धीरे ये पुर्जे एक-एक करके यही बनने लगे और आखिर मे पूरी मोटरे यही बनने लगे। हिंदुस्तान मे कम-से-कम बारह तरह की मोटरे जोडी जाती है। जिन बडी-बडी मशीनो मे धातु की चादरो को दबाकर मोटरो की बाडियाँ बनायी जाती है वह बहुत महँगी होती है। अगर थोडी-सी मोटरो की माग को पूरा करने के लिए बारह फैक्टरिया कोशिश करती रहे तो उनमे से कोई भी इन महँगी मशीनो को नही खरीद पायेगा। अगर हिंदुस्तान ने एक या दो तरह की मोटरे ही बनाना

शुरू किया होता तो शायद अब तक वह उस मंजिल पर पहुँच गया होता जब पूरी मोटरे यहीं हिंदुस्तान मे बनने लगती।

तीसरी मिसाल मे गॉव मे किसानो को कर्ज देने के सवाल को लूँगा, इसका ताल्लुक भूमि-सुधार के सवाल से है। हिंदुस्तान के अलग-अलग राज्यो मे अलग-अलग हद तक भूमि-सुधार हुए हैं। बहरहाल जमीदारी को खत्म कर दिया गया है। लेकिन काश्तकारो को कर्ज देने के सिलसिले मे अभी तक कोई कारगर कदम नही उठाया गया है। नतीजा यह है कि गॉव मे अब भी बनिया राज करता है और भूमि-सुधार का जो असर हुआ है वह बहुत-कुछ इस बात की वजह से बेकार हो जाता है।

इसलिए यह तो जाहिर है कि कुछ काम शुरू किये गये लेकिन सामान की कमी की वजह से या काम करनेवालो की कमी की वजह से, या किसी भी वजह से ये काम आखिर तक पूरे नही किये जा सके। इसी को कुछ लोग कहते हैं कि कुछ बुनियादी बातो को पूरा करने के बजाय बहुत-से कामो मे कोशिशे बिखरा दी गयी हैं।

नेहरू आपने तीन ऐसे सवाल उठाये है जो हमेशा हमारे सामने रहते हैं। मैं एक दर्जन ऐसी ही मिसाले और दे सकता हूँ। योजना बनाने का सारा मकसद यही होता है कि हम अपनी ताकत को इस तरह इधर-उधर बिखेरते न फिरे बल्कि उसे कुछ फायदेमद कामो मे लगाये। लेकिन यह जरा मुश्किल काम होता है कि हम कौन-सा काम हाथ मे ले और कौन-सा छोड दे।

शिक्षा का सवाल ले लीजिये। हम शिक्षा पर बहुत बडी रकम खर्च करना चाहते हैं। दूसरी तरफ हम ऐसे कामो पर भी पैसा खर्च करना चाहते है जिनसे मुल्क की दौलत पैदा होती है ताकि हमारे पास शिक्षा पर खर्च करने के लिए ज्यादा पैसा हो। हमे इन दोनो चीजो का पलडा बराबर रखना पडता है। लेकिन मैं समझता हूँ कि शिक्षा के मामले मे प्राइमरी (प्राथमिक) तालीम मे बहुत काफी तरक्की हुई है। हालाँकि उतनी तरक्की नही हुई है जितनी कि हम चाहते थे। लेकिन मुझे सारे हिंदुस्तान मे बच्चो को नये स्कूलो मे जाता देखकर बहुत खुशी होती है। ये बच्चे दूसरे बच्चो से बिल्कुल अलग है। साफ नज़र आता है कि वे बहुत बदल गये है। अब ये बच्चे उन बेशुमार बच्चो में

से नही है जिन्हे कभी स्कूल जाना नसीव नही हुआ। हम इन स्कूलो की तादाद और वढायेगे। हमने वेसिक शिक्षा का तरीका अपनाया है। इसने सात साल की पढाई होती है, छ-सात वरस की उमर से लेकर चौदह वरस की उमर तक, दरअसल पूरी प्राइमरी तालीम और सेकडरी (माध्यमिक) तालीम का कुछ हिस्सा इसमे आ जाता है। जव यह सारे हिदुस्तान मे लागू हो जायेगी तव यह हर शख्स की तालीम की वुनियाद होगी। इसके वाद हर लडका अपनी मर्जी के मुताविक टेकनिकल या साहित्यिक या कोई दूसरी तालीम हासिल कर सकता है। हम यहाँ पर इस सवाल की वारीकियो मे तो नही जा सकते लेकिन इस सिलसिले मे हमे अपनी ताकत वहुत-सी वातो मे विखरा देने के सवाल का सामना करना पड़ा है।

आपने देहातो मे लोगो को कर्ज देने का सवाल उठाया है। हॉ, यह सवसे जरूरी सवाल है। दरअसल गाँववालो को कर्ज देने का ज्यादा कारगर इतजाम करने के लिए ही सरकार ने इम्पीरियल वैंक को अपने हाथ मे ले लिया है, हमने उसे जो सरकारी वैंक वना लिया है तो उसकी सवसे वडी वजह यह है कि हम गाँववालो के लिए वहुत वड़े पैमाने पर कर्ज का इतजाम करना चाहते है और मै समझता हूँ कि हमारा यह मकसद पूरा होगा।

फिर आपने मोटरो का सवाल उठाया था। यह कोशिशो को विखराने की वहुत अच्छी मिसाल है, क्योकि कई प्राइवेट कम्पनियो ने यह काम अपने हाथ मे ले रखा है। अगर एक ही कारखाना होता, अगर मुमकिन होता तो सरकारी कारखाना होता तो, वह अव तक आधे दर्जन प्राइवेट कम्पनियो के मुकावले मे कही आगे निकल गया होता। दरअसल, मै समझता हूँ कि हिदुस्तान मे सिर्फ तीन ही कारखाने है, मेरा मतलव है कि खास कारखाने तीन ही है।

मॉड . लेकिन इनमे कोई दर्जन भर से ज्यादा किस्म की मोटरे जोड़ी जाती है।

नेहरू . हॉ . . लेकिन असली दिक्कत तो यह है कि हिदुस्तान मे खपत वहुत थोडी है। आगे चलकर होनेवाला यह है कि हम समाजी इस्तेमाल के लिए वस और ट्रक ज्यादा वनायेगे और जाती इस्तेमाल की मोटरें दिन-व-दिन

कम। धीरे-धीरे जैसे-जैसे लोगो का रहन-सहन ऊँचा होता जायेगा वैसे-वैसे ज़ाती इस्तेमाल की मोटरे भी बनेगी लेकिन उनकी तादाद बसो और ट्रको के मुकाबले मे कम होगी।

मॉड मैं अभी तक इसी योजना के सवाल को पीटे जा रहा हूँ। इसमे एक और दुविधा होती है, एक तरफ तो यह सवाल होता है कि हम अपने सामने बहुत छोटे लक्ष्य रखकर योजना बनाये और उसके नतीजो से उन हुकूमतो की योजनाओ के नतीजो का मुकाबला करना चाहे जहाँ ज़ोर-ज़बर्दस्ती से योजनाएँ चलायी जाती है और दूसरी तरफ यह सवाल होता है कि हम इतना ऊँचा लक्ष्य रखकर योजना बनाये जिसे पूरा करने के लिए बहुत ज्यादा कोशिश की जरूरत होगी और इस कोशिश के लिए उससे कही बडे संगठन की जरूरत होगी जितना कि इस वक्त हिंदुस्तान के पास है।

आप एक हद तक इस सवाल का जवाब दे चुके है, लेकिन आपके ख्याल मे क्या इस किस्म की दुविधा सचमुच आपके सामने है?

नेहरू है क्यो नही। योजना चलाने मे निरी दुविधाएँ सामने आती है। कदम-कदम पर हमे यह फैसला करना पडता है कि इस चीज को चुने या उस चीज को और हमे बीच का कोई रास्ता निकालना पडता है।

मिसाल के तौर पर, हमारा पक्का यकीन है कि देश के उद्योगीकरण की बुनियाद भारी उद्योगो पर होना चाहिये, मेरा मतलब है लोहे और फौलाद के अलावा मशीने बनाने का उद्योग हमारे मुल्क मे हो। लेकिन ये कारखाने ऐसे होते है जिनमे फौरन आम लोगो की जरूरत की चीजे नही बनती। उसमे तो बस खपत ही होती है। बरसो बाद जाकर जब ये कारखाने काम करना शुरू करते है तब तक तो ये एक भारी बोझ ही बने रहते है। और इसके कई और नतीजे भी हो सकते है आम खपत की चीजो की कमी, मद्रा-प्रसार, और कीमतो मे बढती। इन बातो का मुकाबला करने के लिए हम दूसरी तरफ बहुत बडे पैमाने पर कुटीर-उद्योग और ग्राम-उद्योग कायम कर रहे है। यह दुविधा तो है लक्ष्य कही बहुत ऊँचा न हो, या लक्ष्य कही बहुत नीचा न हो, हमे इन दोनो के बीच का कोई रास्ता ढूंढकर जहाँ तक मुमकिन हो आगे बढने की कोशिश करना चाहिये।

मॉड : तमाम दुनिया के अखबारो को पढते वक्त आपने एक बात यह देखी होगी कि हिंदुस्तान और चीन की पचवर्षीय योजनाओ का मुकाबला करना और उनका जिक्र इस तरह करना जैसे दोनो एक-दूसरे से बाजी लगाकर काम कर रहे हो, एक आम तरीका हो गया है। कभी-कभी तो लोग यहाँ तक कहते है कि जोर-जबर्दस्ती से योजनाएँ चलाने और समझा-बुझाकर योजनाएँ चलाने का नतीजा जब सामने आयेगा तो उससे कुछ ऐसी अहम बाते पैदा होगी जिनका असर पूरे एशिया के भविष्य पर पडेगा।

अगर मुझे ठीक याद है तो अब तक हिंदुस्तान हर साल अपनी राष्ट्रीय आमदनी का छ-सात फीसदी हिस्सा आर्थिक विकास के कामो मे पूँजी की तरह लगाता है। चीन मे इस वक्त लगभग ग्यारह से तेरह फीसदी तक राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास के कामो मे लगायी जाती है और उनका इरादा इसे बढाकर १९६० तक बीस फीसदी तक कर देने का है। पूँजी लगाने की यह दर लगभग उतनी ही होगी जितनी कि असरीका या सोवियत यूनियन ने अपने बहुत बडे औद्योगिक विस्तार के वक्त इस काम के लिए अलग रख दी थी।

अभी उस दिन आपने कहा था कि हिंदुस्तान का मकसद दरअसल यह है कि हम तरक्की की उस सतह पर रहे जिसे हमने "उम्मीद की सतह" कहा है, यानी आर्थिक तरक्की की रफ्तार इतनी हो कि लोगो को यह मालूम होता रहे कि लगातार तरक्की हो रही है। मैं जो सवाल पूछना चाहता हूँ वह यह है क्या अगले कुछ अरसे मे हिंदुस्तान पूँजी लगाने की उस दर का, तरक्की की उस रफ्तार का मुकाबला करने की कोशिश करेगा—या इस बात की कोशिश करना हिंदुस्तान के बस मे होगा—जो चीन के योजना बनानेवालो ने अपने देश की जनता पर थोप दी है। या हिंदुस्तान का रवैया सिर्फ यह होगा कि हमे इसकी परवाह नही कि चीन मे क्या हो रहा है, हम तो इस "उम्मीद की सतह" को कायम रखना चाहते है और हम इसकी पूरी कोशिश करेगे। कहने का मतलब यह कि क्या चीन की तरक्की की रफ़्तार का मुकाबला करने की बात आपके दिमाग मे है।

नेहरू · चीन का या किसी दूसरे मुल्क का मुकाबला करने का कोई सवाल पैदा नही होता। चीन मे या दूसरे मुल्को मे जो कुछ हो रहा है उसमे

मुझे एक दोस्त की हैसियत से दिलचस्पी है और हम उनसे सीखना चाहते है। अगर कही ज्यादा काम हो रहा है तो उससे हमे भी ज्यादा काम करने का हौसला होता है।

लेकिन कुछ हदे होती है जिनसे आगे कोई मुल्क नही जा सकता। इससे कोई फर्क नही पडता कि उस मुल्क मे हुकूमत जोर-जबर्दस्ती से चलायी जाती है या वहाँ जम्हूरी हुकूमत है। जिन मुल्को मे जोर-जबर्दस्ती से हुकूमत चलती है उन्हे भी इन हदो का ख्याल रखना पडता है। वह इन हदो से आगे नही जा सकते। जब वह चीन मे कोई हुक्म जारी करते है तो मेरे ख्याल मे यह समझ लेना गलत होगा कि वहाँ की सरकार जो चाहे कर सकती है। उसे बहुत-से किसानो को अपने साथ लेकर चलना पडता है। मुमकिन है कि वहाँ जिस किस्म का सगठन है उसकी मदद से वह लोग हमसे कुछ ज्यादा तरक्की कर ले। लेकिन आखिर मे चलकर उनके ऊपर भी कुछ बातो की वजह से पाबदियाँ लग जाती है। चेयरमैन माओ त्से-तुग ने कहा है कि चीन मे सोशलिज्म की बुनियाद रखने मे बीस बरस लग जायेगे। इस तरह आप देखते है कि वह बहुत लम्बे अरसे की बात सोचते है और वह जितने बडे पैमाने पर काम कर रहे है उसके बावजूद वह बहुत जल्दी कुछ कर लेने की उम्मीद नही करते।

अपनी हदो के अदर हम भी पूरी कोशिश करते है और हम समझते है कि एक बार जहाँ काम चल निकला तो रफ्तार अपने-आप तेज होती जायेगी। सवाल यह होता है कि हमे लगातार आगे बढते रहना चाहिये। मैं समझता हूँ कि हम उस हद को पार कर गये है जब हम एक जगह पर ठहरे हुए थे, जब हमारी हालत एक जगह पर ठहरे हुए पिछडे मुल्क की थी। इस हद को पार करना बहुत मुश्किल होता है। लेकिन हम उसे पार कर रहे है। दरअसल हम उसे पार करके अब उस तरफ बढ रहे है जब हमारी रफ्तार बढती जायेगी।

हमारी पहली पचवर्षीय योजना एक तरह से एक तजुर्बा था जिसमें हमने कुछ बुनियादी बाते तै की। दूसरी योजना मे हमारी रफ्तार ज्यादा तेज है, बहुत तेज तो नही है। तीसरी योजना में हमारी रफ्तार बहुत तेज हो जायेगी।

मॉड मैं आपसे एक ऐसा सवाल पूछना चाहूँगा जिसका ताल्लुक आर्थिक बातो से नही है।.

इनकलाबी एशिया के जो मसूबे है उनमे से ज्यादातर इस बात से ताल्लुक रखते है कि लोगो के रहन-सहन मे बडी तेजी से तरक्की होगी। अगर, जैसा कि कुछ लोगो का कहना है, हिदुस्तानी एशिया की दूसरी कौमो के मुकाबले मे इस दुनिया के ऐशो-आराम के चक्कर मे कम रहते है, तो क्या हिदुस्तान का ख्वाब उसी हद तक कम गतिशील नही है? जो सवाल मै पूछ रहा हूँ वह दरअसल यह है कि क्या यह बात सच है—जैसा कि लोग अकसर कहते है—कि हिदुस्तानी एक "रुहानी कौम" है और उन्हे एशिया के या दूसरी जगहो के लोगो के मुकाबले मे खाने-पीने और रहन-सहन की तरक्की मे कम दिलचस्पी है?

नेहरू मै इस बात को इस तरह नही कहूँगा कि हिदुस्तानी "ज्यादा रुहानी" है। मै यह कहूँगा कि जो समाज जितना ठहरा हुआ होता है वह रुहानियत की उतनी ही ज्यादा बात करता है। फिर भी कुदरती तौर पर हिदुस्तानियो मे और दूसरी कौमो मे फर्क है। यह बात नही है कि हिदुस्तानी दूसरो से अच्छे है। लेकिन, मिसाल के तौर पर, यहाँ भी लोगो मे यह कुदरती ख्वाहिश होती है कि उनके पास दौलत हो, लेकिन यहाँ दौलतवालो को कभी बहुत ज्यादा इज्जत की नजर से नही देखा गया है। लोग दौलत चाहते है लेकिन हमारे पूरे पिछले इतिहास मे विद्वान् आदमी की इज्जत हमेशा दौलतमद आदमी से ज्यादा हुई है। यह हमारी कौम का रवैया है। यह एक ऐसी बात है जिसका असर पडता है। लेकिन कुदरती तौर पर लोगो मे अच्छा खाने, अच्छा पहनने और आराम से रहने की ख्वाहिश मौजूद है।

तक पहुँचने मे हमे अभी एक-दो पीढियाँ और लग जायेगी जब हर आदमी उस सतह पर पहुँच जायेगा जिसे हम ऐश-आराम की जिंदगी कह सकते है। इसलिए अभी फौरन तो यह सवाल पैदा नही होता। लेकिन एक बार जब लोगो के रहन-सहन की सतह उतनी ऊँची हो जायेगी तो मै कह नही सकता कि उस वक्त उनका रवैया क्या होगा। उस वक्त देखा जायेगा।

मॉड . लेकिन क्या आपके ख्याल मे हिंदुस्तानियो की रोज़मर्रा की जिंदगी मे भी अच्छा खाने, अच्छा पहनने और ज्यादा आराम से रहने की ख्वाहिश का उतना ही दखल है जितना दूसरे समाजो मे ?

नेहरू शायद है तो। शायद कुछ बातो मे यह ख्वाहिश उतनी ज्यादा नही है। मिसाल के तौर पर अमरीका मे लोगो मे यह ख्वाहिश योरप के बहुत-से मुल्को के मुकाबले मे ज्यादा है। मौजूद यह हर जगह है लेकिन शायद अमरीका मे लोग रुपये-पैसे के बारे मे, हर चीज की कीमत के बारे मे ज्यादा बाते करते है, मिसाल के तौर पर इगलैड या फ्रास के मुकाबले मे वहाँ के लोग रुपये-पैसे की ज्यादा बाते करते है। इस एतबार से मुमकिन है कि हिंदुस्तान मे यह रुपये-पैसे का लालच कम हो, लेकिन है जरूर। लेकिन यह सवाल दरअसल उसी समाज में पैदा होता है जहाँ लोगो को ज्यादा-से-ज्यादा दौलत बटोरने की धुन होती है, जहाँ लोग दूसरे के कधे पर पैर रखकर ऊपर चढते है। .

मॉड एक सवाल है जिसका ताल्लुक हिंदुस्तान के इन सब आर्थिक सवालो से है वह है आबादी का सवाल।

जब मै इस बात के बारे मे सोचता हूँ कि हिंदुस्तान की आबादी हर दस साल मे पाँच करोड बढ जाती है तो मेरे सामने एक ऐसे आदमी की तस्वीर आती है जो नीचे उतरती हुई बिजली की सीढियो पर ऊपर चढने की कोशिश कर रहा हो। उसे अपनी जगह पर टिके रहने के लिए भी बडी तेजी से कदम बढाना पडते है और आगे बढने के लिए तो उसे भागना पडता है। इस सिल-सिले मे कोई पालिसी अख्तियार करने की, कोई कदम उठाने की जरूरत है।

श्रीलका की मिसाल ले लीजिये। पिछले कुछ बरसो मे लका में मले-रिया का नाम-निशान मिटा दिया गया है जिसका नतीजा यह हुआ है कि वहाँ

की आवादी इतनी वढ गयी है कि कुछ ही वरसो मे वहाँ की आवादी फिर दुगनी हो जायेगी। प्रधान मन्त्रीजी, मै जानता हूँ कि आपने हिंदुस्तान मे परिवार-नियोजन को अपना नैतिक समर्थन दिया हे। मैने कलकत्ते और वम्वई मे इस तरह की कुछ क्लीनिके देखी भी है, लेकिन जाहिर है कि यह मसला जितना वडा है उसे देखते हुए जो कुछ हो रहा है वह वहुत थोडा है। अलग-अलग कुछ इक्का-दुक्का लोग कुछ करने की कोशिश कर रहे है। अभी कुछ दिन हुए मै एक महिला से मिला था और उनके साथ एक गॉव मे भी गया था जहां वह परिवार-नियोजन का काम करती थी। वह सचमुच वहुत ही अच्छी औरत थी। लेकिन इन लोगो की हिम्मत कुछ टूट जाती है क्योकि वे इस वात को समझते है कि इस सवाल को फौरन हल करना वहुत जरूरी है लेकिन उन्हे ऐसा महसूस होता है कि अपने काम को किसी वडे पैमाने पर चलाने के लिए उन्हे सरकार से जितनी मदद मिलना चाहिये या जितना सामान और रुपया-पैसा मिलना चाहिये वह उन्हे नही मिलता।

इस वारे मे आपकी क्या राय है? क्या आप इस सिलसिले मे कोई योजना वना रहे है? हिंदुस्तान के वाहर ज्यादातर लोग इस वात को नही जानते कि हिंदुस्तान उन इने-गिने मुल्को मे से है जहॉ मजहव की तरफ से परिवार-नियोजन का कोई गहरा विरोध नही होता; यह वहुत वड़ी वात है जिससे इस काम को शुरू करने मे वडी मदद मिल सकती है। लेकिन क्या हिंदुस्तान मे इस काम को ज्यादा वडे पैमाने पर करने के लिए कोई योजनाएँ है?

नेहरू : मै नही समझता कि कोई ऐसी योजना है जो सव लोगो पर लागू होती हो। कुछ योजनाएँ है जरूर जो काफी वडे पैमाने की है और धीरे-धीरे वह वढती जायेंगी।

लेकिन मै एक वात कहूँगा : मै समझता हूँ कि परिवार-नियोजन यकीनन वहुत अच्छी चीज है, और हमें इस काम को करना चाहिये लेकिन उसके लिए सिर्फ जवर्दस्त प्रचार और दूसरी सहूलियतो की ही जरूरत नही होती; वल्कि अगर मै ठीक समझता हूँ तो इसके लिए लोगो मे कुछ ज्यादा ऊँची तालीम की भी जरूरत होती है। सिर्फ परिवार-नियोजन से ज्यादा कुछ नही हो

सकता। शहरो में जरूर कुछ हो सकता है और हम वहाँ यह काम कर रहे है। लेकिन मै देहातो की बात कर रहा हूँ। इस तरह यह पूरा सवाल दूसरी वातो के साथ, आर्थिक तरक्की और इसी तरह के दूसरे सवालो के साथ वुरी तरह उलझा हुआ है। अगर मै लोगो की आर्थिक तरक्की के सवाल को अलग रख दूं और उनसे सिर्फ परिवार-नियोजन की वात करूँ तो उससे कोई फायदा नही होगा। दरअसल मेरी आवाज भी उन तक नही पहुँचेगी। उन तक अपनी आवाज पहुँचाने के लिए जितने वडे सगठन की ज़रूरत होगी वह हमारे पास नही है। मै उन तक सिर्फ अपनी गाँवो की सामुदायिक योजनाओ के जरिये पहुँच सकता हूँ—और सिर्फ परिवार-नियोजन के लिए ही नही बल्कि और वातो के लिए भी। इन योजनाओ से एक वुनियाद तैयार होती है, जिसकी वजह से लोग अपने हाथ-पैर चलाते है, जो उन्हे सोचने पर मजबूर करती है, एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करना सिखाती है और वे नये ख्यालात को कबूल करने पर तैयार होते है। आगे चलकर इसी बुनियाद का फायदा हम परिवार-नियोजन के काम के लिए उठा सकते है।

जिन लोगो को परिवार-नियोजन के वारे मे वडा जोश है वह यह समझते है कि हम और सव वातो को ताक पर रखकर वस इस बढती हुई आवादी की मुसीवत के खिलाफ लड सकते है। लेकिन इस मुसीवत के ख़िलाफ सिर्फ वहुत वडे पैमाने पर प्रचार करके नही लडा जा सकता है। मेरी राय मे यह तरीका गलत है। दरअसल इस तरीके से कोई भी नतीजा नही निकलता। मै समझता हूँ कि इस वक्त आर्थिक तरक्की परिवार-नियोजन से भी ज़्यादा ज़रूरी है। इसमे तो शक नही कि जहाँ तक मुमकिन हो इन दोनो के साथ चलना चाहिये।

कॉड यह जरा टेढा मसला है लेकिन मै इसके वारे में एक सवाल और पूछना चाहूँगा। मुमकिन है कि मौजूदा हालत मे परिवार-नियोजन का सवाल एक पेचीदा सवाल हो। लेकिन कुछ मुल्को में, जैसे जापान मे, कुछ और तरीके इस्तेमाल किये जाते है जिनकी मदद से कुछ ही वरसो मे वच्चो की पैदाइश की रफ्तार कई फीसदी कम की जा सकती है। चूंकि हिंदुस्तान आर्थिक योजनाओ की एक वहुत अहम मज़िल मे दाखिल हो रहा है इसलिए वह चाहेगा

कि उसकी आबादी एक खास हद पर कायम रहे ताकि आपकी आर्थिक योजनाएँ हकीकत से ज्यादा क़रीब हो सके।

नेहरू . मुझे मालूम नही कि जापान मे कौनसे तरीके इस्तेमाल किये जाते है . .

कॉंड : वहाँ बहुत बडे पैमाने पर बच्चे गिरवा दिये जाते है और इसे कानूनन जुर्म नही समझा जाता।

नेहरू हमने इस बात की तरफ ध्यान नही दिया है। आमतौर पर लोग महसूस यही करते है कि बच्चे गिरवाने को बढावा नही देना चाहिये, जब किसी खास वजह से डाक्टर कह दे तो बात और है।

कॉंड : बहरहाल, इस वक्त हिंदुस्तान के गाँवो की सेहत और सफाई के एतबार से जो हालत है उसमे इस काम मे बहुत मुश्किलो का सामना होगा और इससे जितने मसले हल नही होगे उससे ज्यादा नये मसले पैदा हो जायेगे।

नेहरू यही बात है . इसके लिए लोगो की सेहत ठीक रखने के वास्ते बहुत जबर्दस्त इतजाम की जरूरत होगी।

कॉंड · मतलब यह कि आपकी राय मे तेजी से बढती हुई आबादी के इस मसले का हल यह है कि पूरे मुल्क मे आम आर्थिक तरक्की हो, परिवार-नियोजन तो इसी के अदर एक छोटा मसला है जिसे अकेले हल करने से आबादी का मसला हल नही हो सकता।

नेहरू · हां, बुनियादी सवाल आम तरक्की का है, समाजी एतबार से इसका हल यह है कि लोगो को रोजगार मिले और इसी तरह की दूसरी बाते। इसके साथ ही परिवार-नियोजन का भी काम करते रहना चाहिये, उसके लिए एक फजा, एक वातावरण तैयार करना चाहिये, और फिर शायद आगे चलकर हम ज्यादा बडे पैमाने पर इस काम को कर सकते है, लेकिन उसी वक्त जब हमने पहले से उसके लिए बुनियाद तैयार कर ली हो।

कुछ भी हो, इस वक्त तो अगर हम पूरी तरह परिवार-नियोजन के लिए ही काम करे तो भी मै नही समझता कि अगले दस बरसो मे हमे कोई बहुत बडी कामयाबी मिल सकती है। लेकिन मुझे आर्थिक मामलो मे तो उससे बहुत पहले कामयाबी हासिल कर लेना है, मै इतना इतजार कर ही नही सकता।

मॉड मैं इस नाजुक सवाल से एक दूसरे नाजुक सवाल पर आने की कोशिश करूँगा। कुछ ही हफ्ते पहले मैं खजुराहो गया था, वहाँ मदिर के पास एक बडे-से वरगद के पेड के नीचे वैठकर मैं एक अधेड उम्र के आदमी से वाते कर रहा था, मेरे ख्याल से वह कही पढाते थे। वहुत खूवसूरत आदमी था, लम्वी-सी दाढी थी उसके, वहुत ही समझदार आदमी था, ब्राह्मण था, और हम लोग हिंदुस्तान के वारे मे वाते कर रहे थे। जव हम लोग वातचीत खत्म कर चुके तो वह उठा और कुछ वुजुर्गो की तरह सजीदगी के साथ बोला "यह याद रखो कि जव तक हिंदुस्तान मे जवाहरलाल है तव तक दूसरी वात है और जब हिंदुस्तान मे जवाहरलाल नही रह जायेगे तव वात विल्कुल ही दूसरी हो जायेगी।"

मैं यह वात इतने विस्तार के साथ सिर्फ उसे ज्यादा साफ तौर पर पेश करने के लिए कह रहा हूँ जिसे आप अच्छी तरह जानते होगे, यही कि हिंदुस्तान मे लोग वहुत वडे पैमाने पर यही महसूस करते है। दरअसल मैं तो यह समझता हूँ कि यह सवाल इस वक्त हिंदुस्तान के आम लोगो के दिमाग पर सवसे ज्यादा छाया हुआ है। जव हिंदुस्तान के पास आप जैसा नेता नही रह जायेगा तव क्या होगा ? मै जानता हूँ कि हर खाकसार आदमी की तरह आप यह जवाब देगे कि कोई आदमी ऐसा नही होता कि उसके विना दुनिया का काम रुक जाये। लेकिन जाहिर है कि यह सवाल इससे ज्यादा पेचीदा है। मैं अगर इसे थोडे-से लफ्ज़ो मे कह दूँ तो आज आप मेरी राय मे इस मुल्क मे कई जिम्मेदारियाँ निभा रहे है। मैं इनमे से तीन सवसे वडी जिम्मेदारियो का ज़िक्र करूँगा।

सवसे पहले तो आप हुकूमत करने वाली पार्टी के नेता है, आप उस सगठन के नेता है जिसके वारे मे आपने उस दिन कहा था कि इतने वडे और इतने पेचीदा मुल्क पर ऐसे सगठन के विना हुकूमत करना नामुमकिन है। इस पार्टी मे जो तरह-तरह के लोग है उन सवको आप ही एक साथ रखते है। दर-असल, इस पार्टी मे आपकी वही हैसियत है जो आग वुझानेवाले की होती है, जहाँ कही भी आग लगती है आप भागकर वहाँ पहुँच जाते है, और अपनी जादू-भरी वातो से आग को वुझा देते है।

दूसरी वहुत वडी जिम्मेदारी जिसे आप पूरा करते है वह यह है कि आप

हिंदुस्तान के मध्यम वर्ग और हिंदुस्तान के गाँव के बीच रिश्ता कायम रखनेवाली कड़ी है। यह रिश्ता कायम रखना कोई आसान काम नही है।

और तीसरी जिम्मेदारी, जिस पर मैं वहुत जोर दूंगा क्योकि मैं उसे सबसे जरूरी समझता हूँ, यह है कि आज हिंदुस्तान मे जो कुछ भी होता है उसका झुकाव आप ही के दम से प्रगतिशील दिशा मे रहता है। मेरा मतलब है देश के अन्दर के मामलो मे भी और विदेशी मामलो मे भी। जो कुछ हो रहा है उसे समाजी रग आप ही देते है और आप ही हिंदुस्तान का ध्यान विदेशो की तरफ खीचते है, जिससे इस वात का खतरा कम हो जाता है कि हिंदुस्तान अपने ही को सबसे अच्छा समझकर अपनी अलग ही एक दुनिया वनाये रहे। मै आपकी इस तीसरी जिम्मेदारी को आपकी सबसे वडी जिम्मेदारी समझता हूँ।

मुमकिन है आपकी जगह कोई दूसरा पार्टी का नेता मिल जाये, यह भी मुमकिन है कि वह हिंदुस्तान के मध्यम वर्ग और देहातो के वीच रिश्ता कायम रखने की जिम्मेदारी भी आपकी तरह पूरी कर सके, लेकिन मै नही समझता कि हिंदुस्तान को आपकी जगह लेनेवाला कोई ऐसा आदमी मिलेगा जो हर काम समाज को नजर मे रखकर करने की दिशा मे, प्रगतिशील दिशा में आप जितना ही असर डाल सकेगा।

प्रधान मत्रीजी, क्या आप कृपा करके इस वारे मे साफ-साफ अपने ख्याल जाहिर करेगे? इस सिलसिले मे आपकी क्या राय है? मै जानता हूँ कि हिंदुस्तान मे और हिंदुस्तान के वाहर करोडो लोग इस वारे मे आपकी राय जानना चाहेगे।

नेहरू : तो आपने इस सवाल के तीन पहलुओं का जिक्र किया है। मै एक चौथे पहलू का भी जिक्र कर दूं। वह चौथा पहलू यह है कि सिर्फ मै ही नही वल्कि हम वहुत-से लोग, हिंदुस्तान के उस जमाने के, जव वह अपनी आजादी के लिए लड रहा था, और आजादी के वाद के इस दूसरे जमाने के वीच की कडी है, यह दूसरा जमाना जो निर्माण का जमाना है।

कुदरती वात है कि जिन लोगो का ताल्लुक आजादी की उस लडाई से था वह दिन-व-दिन कम होते जायेगे। हमे एक तरह से वहुत फायदा रहा है। कुछ तो इस वजह से कि उस लडाई के जमाने में हमे वहुत शोहरत मिली, पब्लिक

मे हमारा असर वढा, इस असर को अव हम निर्माण के कामो के लिए इस्तेमाल कर सकते है। आमतौर पर ससदीय लोकतत्र मे उस किस्म के ज़ाती असर की कोई अहमियत नही होती, जो लडाई के ज़माने मे वहुत काम आता है। कोई अकेले मुझे ही नही वल्कि हिंदुस्तान मे हर दर्जे के बीसियो वल्कि सैकडो लोगो को इस शोहरत की वजह से वहुत सहूलियत हुई। लेकिन जैसे-जैसे यह नयी पीढी वडी होगी, जिसे इस लडाई के वारे मे कोई जाती जानकारी नही होगी वैसे-वैसे यह सहूलियत कम होती जायेगी। वे इसके वारे मे दूसरो से सुनेगे, किताबो मे पढेगे और मुमकिन है वे यह समझने लगे कि सिर्फ चिल्लाने से काम हो जाता है। ये दुश्वारियाँ तो हमारे सामने है। फिर भी आखिर मे हम इन पर काबू तभी पा सकते है जब हम लोगो को कुछ खास तरीको से सोचना सिखाये, उनमे नयी बातो को कबूल करने की खूबी पैदा करे। इस वक्त हम आम लोगो को इस तरह की बाते सिखा रहे है और मै समझता हूँ कि हमे इसमे काफी कामयाबी भी मिल रही है।

इसी सवाल को ले लीजिये कि हिंदुस्तान दुनिया के वारे मे, दूसरे मुल्को के वारे मे किस तरह से सोचता है। तो, यह वात तो जाहिर है कि इस मामले मे दो ताकते एक दूसरे के खिलाफ दिखायी देती है। एक तरफ तो हिंदुस्तान की हमेशा से ही कुछ अपनी अलग ही एक दुनिया बनाकर रहने की आदत रही है, शायद यह आदत इस हद तक किसी दूसरे मुल्क की नही रही। मै समझता हूँ कि हर वडे मुल्क का, हर वडे खित्ते का यही रवैया हो जाता है क्योकि वह खुद अलग एक दुनिया होता है। छोटे मुल्क को मजवूर होकर दूसरो के वारे में सोचना पडता है। हिंदुस्तानियो को दूसरे मुल्को के वारे में, वाहर की दुनिया के वारे मे सोचने की आदत डालने मे मेरा हाथ यकीनन रहा है—उस ज़माने मे भी जव हम अपनी आज़ादी के लिए लड रहे थे। मै समझता हूँ कि आप यहाँ देखेगे कि एक औसत गाँववाला या दिल्ली का औसत ताँगेवाला भी हमारी वैदेशिक नीति के वारे मे कुछ कह सकता है। मुमकिन है वह सव वारीकियो को न समझे, लेकिन वह इस वक्त वाहर की दुनिया के वारे मे जितना सोचता है उतना इससे पहले कभी नही सोचता था।

ये सव वुनियादे पड रही है और शायद इसकी वजह से आम हिंदुस्तानियो

का सोचने का तरीका और दुनिया मे जो कुछ होता है उसके बारे में उनका रवैया बदलता जा रहा है। यह तब्दीली किस हद तक होगी या जब मैं या मेरे साथ के दूसरे लोग नही रह जायेंगे तब आखिर मे क्या होगा, इसके बारे मे यकीन के साथ कोई भी कुछ नही कह सकता। ..हम अपने सामने कोई मकसद रखकर काम करते है और अपनी ताकत भर उसके लिए काम करते रहते है . फिर दूसरे लोग उसी काम को हाथ मे ले लेते है।

आपने जो सवाल पूछा है उसका कोई जवाब नही है। लेकिन मैं आपको यह बता दूं कि मुझे भविष्य के बारे मे कोई डर नही है। कुछ तो इस वजह से कि डरने से कोई फायदा नही होता, और कुछ इस वजह से कि जिससे जितना बन पडता है वह उतना काम करता है। .

मॉड : यह तो है. . .लेकिन हर पालिसी के लिए इस बात की ज़रूरत होती है कि कुछ लोग उसे चलायें, उसे आगे बढाये। मुझे हर तरह के "वाद" से नफरत है लेकिन आपने हिंदुस्तान मे एक ऐसी पालिसी चलायी है जिसमें हर काम समाज के फायदे को देखकर किया जाता है और जिसे लोग अकसर "नेहरूवाद" कहते हैं। क्या आप समझते हैं कि आपके साथियो मे ऐसे लोग काफी तादाद मे मौजूद है जो इस पालिसी को चला सकें; मेरा मतलब ऐसे लोगो से है जो हर बात का झुकाव इसी समाज के फायदे को ध्यान मे रखने की तरफ रख सकें।

नेहरू : मैं समझता हूँ कि इसे "नेहरू की पालिसी" या "नेहरूवाद" कहना बिल्कुल गलत है। यह वही पालिसी है जो गाँधीजी ने हमारे दिलो में बिठा दी थी।

इसमें मेरा हाथ जहाँ से आता है वह है वैदेशिक मामलात के सिलसिले में। जहाँ तक मुल्क के अंदर का सवाल है, तो यह प्रगतिशील पालिसी—गाँव पर ज्यादा जोर देना और गाँव और मध्यम वर्ग के बीच की दूरी को खत्म करना—यह उसी वक्त से कांग्रेस की बुनियादी पालिसी रही है जब से गाँधीजी मैदान मे आये, उन्होंने लाखो लोगो को इस ढंग से सोचना और इस ढर्रे पर चलकर काम करना सिखाया। मुझे इसमे जरा भी शक नही कि हमारी पालिसी में से यह बात कभी खत्म नही होगी। हिंदुस्तान मे बहुत-से लोग ऐसे

है जिनका झुकाव गॉव की तरफ है—मेरा मतलब है कि मध्यम वर्ग मे ऐसे लोग है जिनका झुकाव गॉव की तरफ है और ऐसे गॉववालो की तादाद भी वहुत है जो एक तरह से वढ गये है, तरक्की कर गये है। चाहे और कोई तव्दीली हो जाये लेकिन हमारी पालिसी का यह रुख कभी मिट नही सकता।

कर्रॉंड आपकी इजाजत से मै इसी नाजुक मसले के वारे मे एक सवाल और पूछूंगा ?

हिंदुस्तान मे ऐसे वहुत-से लोग है—और वाहर से हिंदुस्तान आनेवाले भी ऐसे वहुत-से लोग है—जिन्हे इस वात का पक्का यकीन है कि काग्रेस इतनी वडी पार्टी है और इसीलिए उसमे इतनी अलग-अलग तरह के लोग है कि कुछ हालतो मे, और जव आप उसके नेता नही रह जायेगे, तव उसके दो टुकडे हो जायेगे, अगर वहुत मोटे-मोटे तरीके से कहा जाये तो एक तो "वायाँ वाजू" होगा जिसे समाज के फायदे का ख्याल रहेगा और दूसरे हिस्से मे "दाहिने वाजू" के वह सारे लोग होगे जो आगे जाने के वजाय पीछे की तरफ देखते है।

कुछ लोगो का कहना है कि उस हालत मे दाहिने वाजू के लोग दकिया-नूसी लोगो से मिल जायेगे और वाये वाजू के लोग वाये वाजू की दूसरी पार्टियो मे शामिल हो जायेगे—और इस तरह हिदुस्तान मे एक दिन वह आयेगा जव कट्टर दकियानूसी लोगो का निकम्मा वहुमत हिंदुस्तान पर हुकूमत करेगा। निराशा फैलाने वाले ये लोग कहते है कि उस हालत मे हिंदुस्तान की हालत कुओमिताग जैसी हो जायेगी। मैने जानकर इतनी भयानक तस्वीर खीची है ताकि मै जो कुछ कहना चाहता हूँ वह साफ हो जाये।

नेहरू . लेकिन कुछ लोग ऐसे है जो विल्कुल इसका उलटा नक्शा खीचते है। वह कहते है कि जव काग्रेस इस तरह टूटेगी तो हिदुस्तान कुओमिताग के रास्ते पर जाने के वजाय कम्युनिस्टो के रास्ते पर जायेगा। दोनो ही पहलू है इस तस्वीर के, दोनो ही तरह की वाते लोग करते है।

अगर आप काग्रेस आदोलन के इतिहास पर नजर डाले—और याद रखिये कि यह सत्तर वरस का इतिहास है—तो आप देखेगे कि उसके सामने कई वार यह मसला आया है और हर वार कुछ दकियानूस लोग उसमे से निकल गये है। इस किस्म के लोग कई मौको पर काग्रेस से निकलते गये लेकिन जो वडा

हिस्सा था वह कभी नही टूटा और लगातार ज्यादा प्रगतिशील रुख अपनाता गया। और यह वात दिन-व-दिन ज्यादा वड़े पैमाने पर होती रही। जिस वक़्त गाँधीजी मैदान मे आये उस वक़्त कुछ वहुत वडे-वड़े नेता काग्रेस छोडकर चले गये, जिनमे मैं कह सकता हूँ ख़ुद जिन्ना साहव भी थे। उन्होने काग्रेस को इसलिए नही छोडा था कि उनके सामने मजहव का या हिंदू-मुसलमान का कोई सवाल था, वल्कि इसलिए कि राजनीति के एतवार से और समाजी विचारो के एतवार से वह इतना आगे वढ गयी थी कि वह उसका साथ नही दे सकते थे। फिर भी काग्रेस ज्यादा मजवूत हुई क्योकि उसमे ज्यादा गठाव आ गया, और यह वात लगातार हो रही है।

फिर, जव हम आज़ाद हुए उस वक्त हमारे सगठन के सामने एक सकट आया। हम अपनी मज़िल पर पहुँच गये थे; आजादी की लडाई का जो रिश्ता हमे एक-दूसरे से वाँधे हुए था वह अव वाकी नही रह गया था और हमारे सामने यह सकट था कि काग्रेस के ज्यादा तरक्कीपसद और ज्यादा दकियानूसी हिस्से अपनी-अपनी तरफ खीच रहे थे। कुछ लोग मुमकिन है छोडकर चले गये हों। लेकिन आमतौर पर हम एक साथ रहे हैं। मुमकिन है इस तरह की चीज़ वार-वार हो। लेकिन कोई साल भर पहले काग्रेस ने अपने-आपको सँभाल लिया है।

वह झुकाव तो मौजूद है जिसका आपने अभी जिक्र किया था। लेकिन हमने अपना आदर्श सोशलिज्म वना लिया है और इसी सिलसिले की वहुत-सी दूसरी वाते भी हुई है। नतीजा यह हुआ है कि आज काग्रेस जितनी मज़वूत है उतनी आजादी के वाद कभी नही थी। आज वहुत-से लोग इस आदर्श को पूरा करने के लिए काम कर रहे है, ऐसे लोग जो सिर्फ अपने राज्य मे ही नही वल्कि सारे हिंदुस्तान मे मशहूर है।

पिछला इतिहास हमें वताता है कि जव भी ऐसे संकट आते है तो हमारे सगठन मे उनका मुकावला करने के लिए काफी ताक़त होती है। मुमकिन है कुछ लोग छोडकर चले जायें लेकिन आख़िर मे कुल मिलाकर और ज्यादा लोग उसमे आ जाते है। मैं यह तो नही वता सकता कि आगे चलकर क्या होगा लेकिन इस वक़्त मैं समझता हूँ कि काग्रेस का वुनियादी और काफी ज़वर्दस्त

का अर्थतंत्र हर तरफ से जकडा रहता है और इसलिए वे मुद्रा-प्रसार के डर के बिना कोई भी कदम उठा सकते है। इससे आम लोगो की तकलीफे और मुसीबते तो बहुत बढ सकती है लेकिन ये मुल्क ऐसा कर सकते हैं। पाबदियाँ तो हम भी लगा सकते है और कुछ पाबदियाँ हमने लगायी भी है। मुमकिन है हम कुछ और पाबदियाँ भी लगाये। लेकिन आमतौर पर हम वैसी पाबदियाँ नही लगा सकते जैसी कम्युनिस्ट मुल्को मे है।

मॉड माफ कीजियेगा मेरे सवाल का मकसद आर्थिक मदद से था। अगर हम इस सवाल को और गहराई मे जाकर देखे तो आखिर मे सवाल पेटेट के हक का होता है, यानी यह कि हम कुछ चीजो को बनाने के कुछ ख़ास तरीके अपना सकते हैं कि नही। पश्चिमी मुल्को मे बाज जाती कारख़ानो को ही इन तरीको का इस्तेमाल करने का हक होता है कोई दूसरा उन्हे इस्तेमाल नही कर सकता, लेकिन कम्युनिस्ट मुल्को मे इन तरीको पर सरकार का हक होता है। तो क्या अमल मे आपने देखा है कि ये कम्युनिस्ट मुल्क पेटेट के हक और चीजो को बनाने के बाज तरीको के मामले मे मदद करने को ज्यादा तैयार है?

नेहरू कम्युनिस्ट मुल्को से मुराद सोवियत यूनियन से और, हाँ कुछ पूर्वी योरप के मुल्को से है। वहाँ तो पेटेट का कोई सवाल ही पैदा नही होता। मतलब यह कि आपका यह कहना ठीक है कि कम्युनिस्ट मुल्क हमे ये सारी बाते और वह तरीके सिखाने को पूरी तरह तैयार है, जिनको दूसरे मुल्को मे पेटेट के हक की वजह से कोई दूसरा इस्तेमाल नही कर सकता। दवाएँ बनाने के सवाल को ले लीजिये

मॉड रसायन उद्योग की मिसाल मेरे ख्याल से और भी अच्छी रहेगी।

नेहरू हाँ, रसायन उद्योग को ले लीजिये। तो कम्युनिस्ट मुल्क हमे इसके बारे मे सब-कुछ सिखाने को तैयार है, जबकि दूसरे शायद इस हद तक तैयार नही है। लेकिन सच पूछिये तो अब उन्हे भी उतनी आनाकानी नही है जितनी पहले थी क्योकि अब वे इस बात को देखते है कि हम किसी-न-किसी तरह सीख तो लेगे ही। मै बताना यह चाहता हूँ कि अब इन बातो

पर उनकी इजारेदारी नही रह गयी है और इसलिए वे हमे इन तरीको को सीखने से रोक नही सकते।

मॉड . वीच मे इस भटकने के वाद, आइये अव हम फिर हिंदुस्तान की वैदेशिक राजनीति पर गौर करे। हिंदुस्तान अफ्रीका के मामलो मे दिन-व-दिन ज्यादा दिलचस्पी ले रहा है, खासतौर पर वादुग कान्फ्रेंस के वाद से। एक तरह से यह वडा महाद्वीप इसान की तरक्की की अगली मजिल है। प्रधान मत्रीजी, एशिया की आजादी का अफ्रीका की हालत पर क्या असर पडा है?

नेहरू : मै यह तो ठीक-ठीक नही वता सकता कि कितना असर पड़ा है लेकिन यह जाहिर है कि काफी असर पडा है।

इस सिलसिले मे मुझे मालूम नही कि पश्चिमी मुल्को मे या अमरीका मे लोग इस वात को काफी हद तक जानते है कि नही कि उपनिवेशो के सवाल पर हमारे दिल मे कितना गुस्सा है। यह वात हमारे खून मे है। हमने यह मुसीवत खुद झेली है। अगर कोई हमसे यह कहे कि हाँ, आप कहते तो ठीक है लेकिन इसके अलावा और भी कुछ पेचीदा सवाल है तो इससे कोई फायदा नही। हमारे लिए यह एक वुनियादी और वहुत जरूरी सवाल है। उपनिवेशो का सवाल और काले-गोरे का सवाल, ये दो वाते एशिया के मुल्को के लिए वहुत वुनियादी सवाल है। हमारे और चाहे जो फर्क हो लेकिन हम एक साथ मिलकर वैठते है, जैसे वादुग मे, और इस मामले मे हमारी सवकी राय एक है। उस मीटिंग मे कुछ मुल्क कम्युनिस्ट मुल्क थे, कुछ कम्युनिस्ट-दुश्मन मुल्क थे, लेकिन इस सवाल पर सवकी राय एक है क्योकि आम लोगो मे इस वात के वारे मे वहुत जज्वा है। इसलिए हमे सिर्फ एशिया के उन मुल्को मे ही उपनिवेशवाद को खत्म करने मे दिलचस्पी नही है जहाँ वह अभी तक वाकी है वल्कि हम चाहते है कि वह अफ्रीका मे भी खत्म हो जाये।

इसमे एक और खतरा भी है। हमे डर है कि अगर ऐसा न हुआ तो अफ्रीका मे भी वहुत गडवड होगी, काले और गोरो का झगडा होगा जो वहुत ही वुरी वात है।

दूसरी वात यह है—और यह एक नयी वात है—कि हमे अफ्रीका मे

एक नये किस्म के उपनिवेशवाद का डर है, वह उपनिवेशवाद जिसकी बुनियाद ज़बर्दस्त फौजी ताकत पर होगी और जो वहाँ अपने-आपको आत्म-शासन या खुदमुख्तार हुकूमत कहेगा। वह किसी साम्राजी मुल्क का उपनिवेश नही होगा बल्कि एक छोटे-से ताकतवर गिरोह का उपनिवेश होगा, जिसका उस मुल्क पर कब्ज़ा होगा और जो उसे खुदमुख्तार हुकूमत कहेगा।

मॉड · यानी उसका आर्थिक कब्ज़ा होगा?

नेहरू नही, नही...उस मुल्क पर उसका राजनीतिक तौर पर कब्ज़ा होगा, खैर आर्थिक कब्ज़ा तो होगा ही। इन मुल्को को खुदमुख्तार या आज़ाद मुल्क कहा जायेगा लेकिन दरअसल वे योरप या अमरीका के इन मुट्ठी भर लोगो के कब्ज़े मे होगे।

मॉड . कुछ वैसी ही हालत होगी जिसे हमने दक्षिणी-पूर्वी एशिया के सिलसिले मे "लैटिन अमरीका के मुल्को वाली हालत" कहा था?

नेहरू : लेकिन अफ्रीका मे काले-गोरे के सवाल की वजह से, काले लोगो की बस्तियाँ अलग रखने की वजह से और इसी तरह की दूसरी बातो की वजह से, हालत और भी बदतर होगी।

"खुदमुख्तार" मुल्क तो बना दिये गये, ठीक है, लेकिन इन मुल्को पर जिन लोगो का कब्ज़ा है वह इगलैंड या फ्रास के बदतर-से-बदतर दकियानूसी प्रतिक्रियावादियो से भी ज्यादा प्रतिक्रियावादी है। देखिये बात यह है कि ये लोग पश्चिम के उन मुल्को के उदारवादी आदोलनो से तो बिल्कुल अलग है जहाँ से ये शुरू-शुरू मे आकर अफ्रीका में बसे थे, उनके दिल में तो बस हर वक्त उन लोगो का डर समाया रहता है जिन पर वे हुकूमत करते हैं और जिनकी तादाद उनसे कई गुना ज्यादा है, और वे सिर्फ उन्हे दबाकर रखने और उनके सीने पर चढे बैठे रहने की ही बात सोच सकते है।

एक मुश्किल और है. अफ्रीका के बहुत बड़े हिस्से ऐसे है जहाँ यूरेनियम और ऐटमी ताकत पैदा करने के लिए ज़रूरी दूसरी चीज़ें पायी जाती है और इसलिए इन मुल्को की अहमियत बहुत बढ गयी है। तो यह अफ्रीका के लिए बड़ी बदकिस्मती की बात है क्योकि इस वजह से अफ्रीका के मुल्को के लिए अपनी आज़ादी हासिल करना ज्यादा मुश्किल हो जायेगा, क्योकि उनकी

धरती मे वह कीमती चीज मिलती है और उन पर इन लोगो का शिकंजा जकडा रहेगा और झगड़े पैदा होते रहेगे।

हम पूर्वी अफ्रीका मे या उत्तरी अफ्रीका मे काफी झगडा-फसाद देख चुके हैं। इस वात को तो अब सभी लोग समझने लगे होगे कि इन सवालो को फौज की मदद से हल नही किया जा सकता। यह वात तो समझ मे आती है कि कभी फौज की मदद लेना जरूरी हो जाये लेकिन किसी आदोलन को दवाने के लिए वरसो तक लगातार फौज का इस्तेमाल—जाहिर है इससे कोई नतीजा निकलनेवाला नही। इससे हालत और खराव होती है और कुछ नही।

रमॉंड प्रधान मत्रीजी, क्या आपकी राय मे योरप की कुछ ताकतो ने जिस तरह बडी समझदारी के साथ एशिया मे अपने कब्जे के मुल्को को छोड़ दिया है, वही तरीका आगे चलकर अफ्रीका के लिए भी एक मिसाल वन सकता है?

नेहरू : क्यो नही। ये तरीके अफ्रीका के लिए भी मिसाल वन सकते है लेकिन मिसाल पर अमल किया जाना चाहिये और काफी जल्दी अमल किया जाना चाहिये।

रमॉंड : मै समझता हूँ कि मध्य-पूर्व में जो हिदुस्तान की दिलचस्पी तेजी से वढ रही है वह भी इसी किस्म की है। यह बात तो खैर है ही कि हिदुस्तान मे वहुत काफी मुसलमान है जिनकी वजह से मध्य-पूर्व के इस्लामी मुल्को के साथ हिंदुस्तान का ताल्लुक ज्यादा गहरा है।

नेहरू : हिदुस्तान मे मुसलमानो की तादाद वहुत बड़ी होने की वजह से तो हमे दिलचस्पी है ही लेकिन इसके अलावा भी हमे इसलिए दिलचस्पी है कि पुराने इतिहास को देखते हुए मध्य-पूर्व के देशो के साथ वहुत जमाने से हमारे ताल्लुकात वहुत करीब के रहे है।

सैकडो वरस तक हमारी सरकारी जवान फारसी थी। इतिहास मे वेशुमार मिसाले इस वात की मिलती है कि ईरान के साथ और मध्य-पूर्व के दूसरे मुल्को के साथ हमारा रिश्ता रहा है, सास्कृतिक रिश्ता और दूसरे रिश्ते। अब जवकि हम फिर आजाद हो गये है, कुदरती बात है कि हम इन रिश्तो को फिर से कायम कर रहे है, हम उन पुराने रिश्तो को फिर जोड रहे है जो

हिंदुस्तान मे अंग्रेजो की हुकूमत की वजह से टूट गये थे। एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने और खबरे पहुँचाने के तरीको मे जो तरक्की हुई है उसकी वजह से भी हम एक-दूसरे के करीब आये है। और यह कुदरती बात भी है। लेकिन इन सब बातो के अलावा भी हम अंतर्राष्ट्रीय राजनीति मे जो कुछ हो रहा है उसकी वजह से भी एक दूसरे के करीब आ रहे है।

हमे मध्य-पूर्व मे बहुत गहरी दिलचस्पी है, वहाँ के अलग-अलग मुल्को मे भी और वहाँ के लोगो मे भी जिनके साथ हम दोस्ती रखना चाहते है और जिन्हे हम आजाद देखना चाहते है। हमे इसलिए भी दिलचस्पी है कि मध्य-पूर्व की जो हालत है उसमे बहुत-से खतरे छुपे हुए है और उसकी वजह से वहाँ गडबडी पैदा हो सकती है।

लॉड अफ्रीका और मध्य-पूर्व के इन सवालो पर गौर करने के बाद हम फिर आबादी के सवाल को ले।

ऐसा मालूम होता है कि जब भी किसी ताकत ने हिंदुस्तान को अपने कब्जे मे करने की कोशिश की है तो उसने साथ ही हिंद महासागर के रास्तो को भी अपने काबू मे रखने की कोशिश की है। हिंदुस्तान मे अंग्रेजो के साम्राज्य की जडे मजबूत उसी वक्त हो पायी जब इंगलैंड ने हिंद महासागर के सभी "नाको" पर—सिंगापुर, लंका, अदन और पूर्वी अफ्रीका पर—सचमुच अपना कब्जा जमा लिया। इस वक्त अफ्रीका मे इस बात का अंदेशा पैदा हो गया है कि हिंदुस्तान अपनी फालतू आबादी को अफ्रीका के कुछ हिस्सो मे एक तरह से "झोक" देना चाहता है। कुछ अफ्रीकी तो यहाँ तक कहने को तैयार है कि हिंदुस्तान से आकर बसनेवाले लोग अफ्रीका के कुछ हिस्सो मे अपने उपनिवेश बसाना चाहते है।

क्या आप इसे मुमकिन समझते है कि आगे चलकर—कुछ ऐसी खास हालतो मे जिनके बारे मे हम पहले से कुछ नही कह सकते—हिंदुस्तान भी हिंद महासागर के इन नाको पर अपना कब्जा जमाना चाहे और दूसरे मुल्को मे अपना असर जमानेवाली ताकत बन जाये?

नेहरू · मै उम्मीद करता हूँ कि वह ऐसा कभी नही करेगा और मै समझता हूँ कि ऐसा मुमकिन नही है, मेरा मतलब है उस तरीके से नही। जहाँ

तक हमारी पालिसी का सवाल है तो हमने साफ-साफ कह दिया है—अफ्रीका के बारे मे भी और दूसरे मुल्को के बारे में भी—कि हम किसी भी मुल्क में हिंदुस्तानियो के लिए ऐसे हक या खास अख्तियार नही चाहते जिनसे वहाँ के रहनेवालो का कोई हक मारा जाये या उन्हे कोई दिक्कत हो। उन्हे वहाँ मेहमानो की तरह रहना चाहिये। अगर वहाँ के लोग उन्हें वहाँ नही चाहते तो उन्हे वहाँ रहने का कोई हक नही है। पिछले सौ बरसो से या इससे भी ज्यादा अरसे से हिंदुस्तानी अफ्रीका जाते रहे है। लेकिन वहाँ कितने हिंदुस्तानी है? बहुत थोडे। जो वहाँ है उनमे से ज्यादातर ब्योपारी है, सिर्फ दक्षिणी अफ्रीका मे जो हिंदुस्तानी है वह वहाँ बहुत दिन पहले कुछ खास शर्तो पर मजदूरो की हैसियत से गये थे। जो लोग दूसरी जगहो मे गये थे वह बडे-बडे सौदागर या छोटे-मोटे ब्योपारी या छोटे दुकानदार या इसी किस्म के लोग थे। इनमे से कुछ का कारोबार चमका और कुछ का नही चला। लेकिन बहुत बडी तादाद मे लोगो को भेजने की कोई कोशिश नही की गयी है। दरअसल उनके जाने पर कुछ रोकथाम करने की कोशिश की गयी है। मैं कोई वजह नही समझता कि हम ज्यादा लोगो को वहाँ भेजने या अपने उपनिवेश कायम करने की कोशिश क्यो करे? बहरहाल, हम कोई भी ऐसा काम नही करेगे जो अफ्रीका के लोगो के खिलाफ पडे।

सॉंड : मै समझता हूँ कि अब हमारी इस बातचीत को खत्म कर देने का वक्त आ गया है और इसे खत्म करने के लिए मै आपसे एक बहुत ही आम सवाल पूछना चाहूँगा।

प्रधान मंत्रीजी, मै आपसे पूछना चाहूँगा कि नये एशिया के बनानेवालो मे एक बहुत ऊँचा दर्जा रखने की हैसियत से, आपका क्या ख्याल है कि अब से कोई बीस-पच्चीस बरस बाद इस महाद्वीप की हालत बदलकर क्या हो जायेगी? एक तो खुद इस महाद्वीप के अदर एशिया की अपनी तरक्की के एतबार से और दूसरे, पिछले पच्चीस बरसो मे दुनिया मे उसकी हैसियत को देखते हुए? हमारे बच्चे और नाती-पोते अपने नक्शो मे किस किस्म का एशिया देखेंगे?

नेहरू : आपका मतलब है राजनीति के एतबार से?

सॉंड : सिर्फ राजनीति के ही एतबार से नही बल्कि खुद इस महा-

[illegible] की अदरूनी तरक्की के एतवार से और दुनिया मे उसकी आम हैसियत के एतवार से।

नेहरू मै समझता हूँ कि सियासी एतवार से तो उसमे कोई खास रद्दो-वदल नही होगी। कमोवेश उसकी हालत वही रहेगी जो आज है, इक्का-दुक्का जगहो पर सियासी सरहदो मे थोडा-वहुत हेर-फेर हो जाये तो वात दूसरी है। उद्योगो के एतवार से उसकी तरक्की होगी। मुमकिन है कुछ हिस्से ज्यादा तेजी से तरक्की करे और कुछ हिस्से धीरे-धीरे। लेकिन इन वातो की वजह से लोगो का रहन-सहन कुछ ऊँचा होगा।

मै समझता हूँ कि इस एशिया का झुकाव वुनियादी तौर पर लडाई-झगडो के मुकावले मे शाति की तरफ ज्यादा रहेगा। मेरे ऐसा सोचने की कई वजहे है। इसकी वजह यह नही है कि सारे एशिया के लोग ज्यादा अमनपसद है, मेरा मतलव यह नही है। लेकिन उनके पिछले तौर-तरीके, उनकी मौजूदा हालत और सोचने का मौजूदा तरीका उन्हे अमन की ज़िदगी और अमन के हालात की तरफ ले जाता है।

इसलिए, मै समझता हूँ कि एशिया दुनिया मे शाति की और मेलजोल से रहने और काम करने की एक ताकत होगी, और अगर आप इजाजत दे तो मै वडे अदव से कहूँगा कि अव से पहले योरप ने इस सिलसिले मे जितना कुछ किया है उससे कही ज्यादा एशिया कर दिखायेगा। आप जानते है कि अगर कुल मिलाकर देखा जाये तो योरप एशिया के मुकावले मे ज्यादा झगडालू रहा है।

मेरे लिए यह वताना ज़रा मुश्किल है कि आगे चलकर क्या होगा लेकिन दो वाते गौर करने लायक है। पहली तो यह कि एशिया का इलाका वहुत वडा है और इस पूरे इलाके को एक समझना अपने-आपको उलझाव मे डाल लेना है। दरअसल इसमे अलग-अलग तरह के लोग वहुत वडी-वडी तादाद मे रहते है और इन सवकी पिछली रवायात, उनकी परम्पराएँ विल्कुल अलग-अलग है। दूसरे, मेरी राय मे, कम-से-कम आनेवाले जमाने की वात करते वक़्त, योरप और एशिया और अमरीका को एक-दूसरे से विल्कुल अलग समझना भी गलती है।

भूगोल के एतबार से तो वे अलग-अलग है, लेकिन मौजूदा तरक्की की वजह से भूगोल की ये सरहदे खत्म हो जाती है, ये फर्क मिट जाते है। अगर आइदा कभी कोई लडाई हुई और हम उसमे जिदा बच गये तो ये सब एक दूसरे के और नजदीक आ जायेगे। और अगर लडाई हुई तो कोई नही कह सकता कि आगे चलकर क्या होगा। इसलिए यह ख्याल भी कि एशिया या एशियाई जज्बा कोई एक ठोस चीज है, या वह योरप या अमरीका के खिलाफ है, धीरे-धीरे मिट जायेगा। और मै उम्मीद करता हूँ कि योरप और अमरीका मे भी ये बाते मिट जायेगी। फिर, जब एशिया मे लोगो की जिदगी की ये बुनियादी जरूरते पूरी हो जायेगी, तो लोग दूसरे शातिपूर्ण क्षेत्रो मे, सस्कृति वगैरह की तरक्की करने के बारे मे सोचना शुरू करेगे। इस बात को हमेशा याद रखिये कि पश्चिमी मुल्को मे चूँकि लोगो की ये बुनियादी जरूरते पूरी हो गयी है इसलिए वह लोग दूसरे सवालो मे इतना बढ-बढकर दिलचस्पी ले सकते है। जब एशिया मे हम यह बुनियादी काम पूरा कर लेगे तब क्या होगा, यह कहना मुश्किल है। लेकिन सब बातो को देखते हुए जिसमे ऐटम बम भी शामिल है—बशर्ते कि हम उससे जिदा बचे रहे—हम कह सकते है कि हमने एक नया रास्ता पकडा है, जो ज्यादा शाति का रास्ता है, हम आपस मे मिलकर काम करने की तरफ जा रहे है जिससे सारी दुनिया का भला होगा।

मै चाहूँगा कि हिदुस्तान के बारे मे एक बात आप याद रखे। इस बात के बावजूद कि हिदुस्तान के मुख्तलिफ हिस्सो मे बहुत फर्क है, और इस बात के बावजूद कि यहाँ के लोगो के सोचने के तरीके अलग-अलग है, लेकिन इस मुल्क के हर आदमी पर—और इसमे कोई छूटा नही है—पिछले पचास बरसो मे गाँधीजी ने जो कुछ किया उसका बहुत गहरा असर पडा है। हम लोगो पर इसका असर सिर्फ इसलिए ही नही पडा है कि गाँधीजी की हस्ती एक शानदार हस्ती थी, बल्कि इसलिए भी असर पडा कि गाँधीजी उन लोगो मे से नही थे जो खाली हवा मे उपदेश देते है, वह बहुत काम करनेवाले आदमी थे और वह एक बहुत बडे आदोलन की अगुआई कर रहे थे, जिसका मतलब यह है कि वह जो कुछ कहते थे उसे करते भी थे। आम लोगो पर इन बातो का बडा असर पडता है। इन पचास बरसो मे उन्होने बहुत-से लोगो को बहुत-कुछ

सौपा, उन्हे मिलकर काम करना सिखाया, वह उनके सुख-दुःख मे उनके साथ रहे और धीरे-धीरे उन्होने उन्हे कामयाबी की मंजिल तक पहुँचाया। यह बहुत बडी बात है।

दूसरा असर यह पडा कि मै समझता हूँ कि हिंदुस्तान में गाँधीजी बहुत बडी इनकलाबी ताकत थे। उन्होने इनकलाब की जो तस्वीर खीची वह अपनी तमाम पिछली रवायतो से नाता तोड़ लेने की तस्वीर नही थी बल्कि उन्ही पुरानी चीज़ो से नयी चीज़े पैदा करके इनकलाब लाने की तस्वीर थी। वह हमेशा पुराने और नये के बीच रिश्ता कायम रखने की बात करते थे। आम लोग गाँधीजी को हिंदुस्तान की तमाम पिछली शानदार रवायतो और आगे चलकर हिंदुस्तान मे होनेवाले तमाम इनकलाबो के बीच की शानदार कडी समझते है। इन दोनो के बीच तार कही टूटा नही है। यह यकीनन बहुत बडी बात है। दूसरे आदोलनो ने, दूसरे इनकलाबो ने हमेशा हर पुरानी चीज़ से रिश्ता तोड लेने की बात की है। हिंदुस्तान मे हम इस किस्म की उलट-पलट से बचे रहे है—खासतौर पर गाँधीजी की वजह से। दरअसल मै तो समझता हूँ कि गाँधीजी उन लोगो से कही बडे इनकलाबी थे जो दिन-रात इनकलाब का राग अलापते रहते है। हिंदुस्तान मे जो-जो भी तब्दीलियाँ हुई है उनकी नीव को मजबूत करने में इस बात का बहुत बड़ा हाथ रहा है और हिंदुस्तान मे हर आदमी पर इसका असर पडा है।

हिंदुस्तान के प्रतिक्रियावादी से प्रतिक्रियावादी लोग भी,—मेरा मतलब उन लोगो से है जो समाजी एतबार से प्रतिक्रियावादी है—अपने प्रतिक्रियावादी ख्यालो में उतने कट्टर नही है जितने कि शायद योरप और अमरीका मे इस किस्म के लोग है। और हमारे यहाँ के प्रगतिशील से प्रगतिशील लोगो पर भी—वह कम्युनिस्ट हो या कोई भी हो—गाँधीजी का कुछ-न-कुछ असर जरूर पड़ा है। गाँधीजी ने समाज के उन हिस्सो के बीच, जो एक-दूसरे के खिलाफ थे, मेल पैदा किया। मै नहीं कहता कि इस तरह से जितने झगडे होते है सब मिट जाते है। लेकिन रास्ता हमेशा जरूर खुला रहता है। और यह बात भी याद रखिये कि जब किसी उसूल का, किसी बुनियादी सिद्धात पर समझौता करने का सवाल आ जाता था तो गाँधीजी रत्ती भर भी हटने को

तैयार नही होते थे। लेकिन वह अपनी तरफ से कभी भी रास्ता बंद नही करते थे ताकि अगर दूसरी तरफ वाला आना चाहे और उनसे मिलकर फिर उस सवाल पर बातचीत करना चाहे तो उसके लिए रास्ता खुला रहे। वह अंग्रेजो के खिलाफ लडे लेकिन उनकी तरफ उनका रवैया हमेशा दोस्ती का रहा।

लोग इस बात को नही समझ पाते कि जिसके साथ हमारी लडाई हो उसकी तरफ हमारा रवैया दोस्ती का कैसे रह सकता है। और यही वजह है कि यह ठडी लडाई का रवैया हमारी समझ मे भी नही आता।

मै इस बात को तो समझ सकता हूँ कि कोई मुल्क अपनी ताकत कायम रखे या आगे चलकर पैदा होनेवाले किसी खतरे से बचने के लिए अपनी ताकत बढा भी ले; या वह लडाई के लिए भी या और किसी गरज़ से ऐसा करे तो मेरी समझ मे आता है। कोई भी ज़िम्मेदार नेता अपने लिए खतरा मोल नही ले सकता। लेकिन यह ठंडी लडाई वाला रवैया मेरी समझ मे बिल्कुल नही आता, क्योकि पिछले पचास बरसो मे गाँधीजी ने हमे जो-कुछ सिखाया है या हमारे राष्ट्रीय आदोलन की जो परम्पराएँ रही है, उसमे इस रवैये की बिल्कुल जगह नही है। हमने बहुत-सी ऐसी बाते देखी जिन पर हमे गुस्सा आया। मिसाल के तौर पर हमारे लोगो पर गोलियाँ चलती थी लेकिन इसके साथ ही अगर कही कोई अंग्रेज अकेला भी जाता हो तो उस पर कोई आँच नही आ सकती थी। और यह सब गांधीजी की सीख का असर था।

तो हमारा कहना यह है कि कोई भी झगडा हो उसमें अपने उसूल को नही छोडना चाहिये, अगर आप किसी बात को बुनियादी उसूल समझते है तो उसे कभी न छोडिये, लेकिन हमेशा दूसरी तरफ वाले के लिए भी कोई रास्ता निकालने की तरकीब सोचिये, यानी हमेशा समझौता करने की बात सोचिये, उसूलो पर नही बल्कि दूसरी बातो पर। मतलब यह कि छोटी-मोटी बातो पर न अडिये, बुनियादी उसूलो पर डटे रहिये लेकिन छोटी-छोटी बातो पर समझौता करने को तैयार रहिये और हमेशा अपने विरोधी की तरफ दोस्ती का बरताव रखिये।

गांधीजी का असर इसीलिए इतना कारगर था कि जब वह अपने विरोधियो के साथ दोस्ती जैसा बरताव करते थे तो उनका विरोध करने का मार्ग

हौसला खत्म हो जाता था। उनके सामने उनके विरोधी का सारा गुस्सा और जोश ठडा पड जाता था। इसकी वजह यह थी कि वह दूसरी तरफवाले को हमेशा अपने रास्ते पर लाने की कोशिश करते थे।

शुरू-शुरू मे जब गाँधीजी काग्रेस मे आये उस वक्त हम लोग इस तरह से नही सोचते थे। हमारा सोचने का तरीका वही था जो हर राष्ट्रीय आदोलन का होता है कि दुश्मन के साथ हमेशा सख्ती से पेश आना चाहिये। फिर गाँधीजी यकायक आये और उन्होने वहुत नरमी से वाते करना शुरू किया। शुरू-शुरू मे तो हम लोगो ने यही समझा कि यह आदमी कमजोर है, दुश्मन के आगे हथियार डाल देना चाहता है। लेकिन धीरे-धीरे हम लोगो ने देखा कि वह आदमी फौलाद का वना हुआ था। हम लोग सिर्फ लम्बी-चौडी वाते करते थे और तमाम वक्त दुश्मन के सामने पीछे हटते जाते थे लेकिन वह नरमी से वात करने के वावजूद रत्ती भर पीछे भी नही हटते थे। दरअसल, नरमी से वात करने से वह खुद तो मजबूत होते थे और दुश्मन कमजोर होता था।

मेरा यह पक्का यकीन है कि यह रवैया, जिसे मैंने ठडी लडाई का रवैया कहा था और जिसका मतलव यह होता है कि आप दूसरे को शैतान समझते रहे और दूसरा आपको शैतान कहता रहे, तो इसका नतीजा तो सिर्फ यह हो सकता है कि दोनो मे लडाई हो, और अगर लडाई न हो तो उससे भी बुरी वात हो यानी हमारे दिलो मे हर वक्त एक जग छिडी रहे, नफरत पैदा हो, हिसा पैदा हो और हम एक-दूसरे को नापसद करते रहे तो यह वहुत ही बुरी वात है। अगर हम इसे दूर कर दे तो मैं समझता हूँ कि दुनिया के मसले वहुत आसान हो जाये। लोगो के दिल को, उनके ख्यालो को वदलने का रास्ता सियासी रास्ते के मुकावले मे कही वेहतर है और ख़ैर फौजी रास्ते के मुकावले में तो वह यकीनन वेहतर है। मेरी मुश्किल यह है कि आजकल किसी सवाल को हल करने के लिए जो भी रास्ते अख्तियार किये जाते है उनमे से ज्यादातर फौजी रास्ते होते हैं। लेकिन मै एक वार फिर कहता हूँ कि एक ज़िम्मेदार राजनेता की हैसियत से मै किसी से यह उम्मीद नही रखता कि वह शाति का अधा पुजारी हो जाये। अगर वह चाहता है तो खुशी से अपनी ताकत वनाये

रखे। लेकिन उसके वारे मे ढोल क्यो पीटे? उसका चर्चा क्यो करे? हर वक्त दूसरो को धमकाये क्यो?

मॉड · प्रधान मत्रीजी, क्या आप समझते है कि चूँकि हिंदुस्तान गाँधीजी के सिखाये हुए रास्ते पर चलकर अपनी शातिपूर्ण क्राति को पूरा करने की कोशिश कर रहा है और चूँकि समझौते मे यकीन रखनेवाले सभी बडे-बडे रूहानी और मजहवी ख्यालात एशिया से पैदा हुए है,—क्या इन सव बातो की वजह से इस जमाने मे भी जव राजनीति ताकत के बल पर चलती है, यह नया एशिया शाति के रास्ते पर आगे वढता रह सकेगा?

नेहरू . कुछ हद तक तो जरूर वढ सकेगा, मै यह उम्मीद करता हूँ। इसमे कोई शक नही कि इन बातो से मदद जरूर मिलेगी।

लेकिन मै चाहता हूँ कि लोग दो बातो के फर्क को समझे—एक होता है सुलह-समझौता और दूसरी होती है कमजोरी। नरमी से बात करना कमजोरी की निशानी नही है। सुलह-समझौते का लफ्ज एक गाली बन गया है, लोग इसका मतलब यह लगाते है कि दुश्मन के आगे हथियार डाल दिये। मै पूछता हूँ कि सुलह-समझौते मे खराबी क्या है बशर्ते कि आप अपने उसूलो पर कायम रहे? असल बात यह है कि आप अपने उसूलो को न छोडे। आखिर पुराने ज़माने मे भी हमे यही सिखाया जाता था कि हमे अपने दुश्मन के साथ भी शराफत का बरताव करना चाहिये, इसलिए मै समझता हूँ कि हमे शराफत से पेश आना चाहिये और गाली-गलौज से बात नही करना चाहिये। और सब बातो को छोड दीजिये, अगर हर वक्त किसी आदमी का मिजाज खराब रहे, उसके दिल मे नफरत और गुस्सा रहे तो वह किसी भी बात के बारे मे सुलझे तरीके से सोच नही सकता, जब आदमी बहुत जोश मे होता है तब भी वह सुलझे तरीके से सोच नही सकता। और अगर दोनो ही तरफ हालत यह हो तो कोई भी ठडे दिमाग से नही सोच सकता और उसका नतीजा बुरा होता है।

मै कह नही सकता आपने यह बातचीत शुरू करते वक्त कुछ फलसफे वगैरह का जिक्र किया था। जैसा कि मै आपको बता चुका हूँ मै फल-सफी तो हूँ नही; इस हद तक आप मुझे भी फलसफी कह सकते है कि हर आदमी

मै नेहरू से मिला

अपनी जिंदगी के बारे मे, भविष्य के बारे मे थोडा-बहुत तो सोचना पडता ही है।

मेरी जिदगी ऐसी रही है जिसमे एक तरफ तो मै हमेशा कुछ-न-कुछ करता रहा हूँ और दूसरी तरफ मेरी जिदगी मे कुछ ऐसे दौर भी आये जब मुझे जेल मे रहना पडा, जब मै पिछले जमाने के बारे मे और कुछ धुंधले तरीके से आने-वाले जमाने के बारे मे सोचने के अलावा कुछ कर ही नही सकता था। इस एतबार से आप हर आदमी को फलसफी कह सकते है। लेकिन आज दुनिया के मसले इतने पेचीदा और मुश्किल है कि उनके सामने मै अपने-आपको बहुत छोटा समझता हूँ। मेरे पास इन मसलो का इसके अलावा और कोई हल नही है कि हर आदमी जिस रास्ते को सही समझता हो उसी के मुताबिक काम करता रहे। मुमकिन है हम हमेशा यह न बता सके कि कौनसी बात सही है। लेकिन अगर हम यह जानते हो कि कौनसी बात गलत है, तो हम उससे बचे और इस तरह कुछ बुरे नतीजो से दूर रहें।

तो. हमने हिदुस्तान मे कुछ काम किया है और जब तक हमारे अदर ताकत और जोश बाकी रहेगा तब तक हम काम करते रहेगे। आखिर इसान की ज़िदगी का मकसद क्या होता है ? जब हरदम नयी बाते होती रहती है, जब हर चीज़ इतनी तेज़ी से बदलती रहती है तब कोई आदमी भविष्य को किस तरह ढाल सकता है ? मै मजहबी आदमी नही हूँ, दकियानूसी बाते मुझे अच्छी नही लगती और न ही मुझे मरने के बाद दूसरे जन्म मे या इसी तरह की दूसरी बातो मे कोई दिलचस्पी है। मै इन बातो के पीछे क्यो परेशान रहूँ ? आज जो सवाल हमारे सामने है वह मेरे लिए काफी है और मै इस बात की फिक्र क्यो करूँ कि मरने के बाद मेरा या मेरी नेकनामी का क्या अजाम होगा। जब मै मर जाऊँगा तो मेरे लिए क्या फर्क पडेगा ? मेरे लिए क्या फर्क पडता है कि जिन चीजो के लिए मैने काम किया है वे तरक्की करे, फूले-फले और हमारा मुल्क इसी रास्ते पर चलता रहे या अगर कोई बेहतर रास्ता मिल जाये तो उसे अख़्तियार कर ले।

इस तरह तमाम बातो का निचोड यह है कि आदमी काम करता रहे, यही असली चीज़ है। गीता मे कहा गया है कि हमे किसी फल के लिए कर्म

करना चाहिये लेकिन फल की बहुत ज्यादा चिन्ता नही करना चाहिये । मतलब यह कि काम करते हुए भी हमारे अदर थोड़ा-सा वैराग्य होना चाहिये। मैं कह नही सकता कि यह बात कहाँ तक मुमकिन है। जाती तौर पर मैं बहुत ज्यादा वैरागी नही हूँ । अकसर मुझे ताव आ जाता है। लेकिन इन कुछ मौकों को छोडकर जब मुझे गुस्सा या जोश आ जाता है, मैं अपने-आपको काफी हद तक अलग रख सकता हूँ। जिस्मानी या दिमागी एतबार से यह शायद बहुत अच्छी बात है। इससे आदमी का मिजाज ठडा रहता है और उसकी दिमागी और जिस्मानी सेहत अच्छी रहती है।

आखिर मे मैं यही कहूँगा कि, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, मेरे दिल मे किसी मुल्क, किसी कौम या किसी शख्स के खिलाफ नफरत नही है। कुदरती बात है कि किसी खास वजह से कोई आदमी मुझे नापसद हो, उसकी कोई बात या कोई हरकत मुझे पसद न आयी हो, लेकिन वह वक्ती बात होती है। दरअसल, मैं किसी को भी नापसद नही करता।

और इससे भी आदमी को अपने कदम मजबूत रखने मे मदद मिलती है ।